निरतिवाद

अर्थात्

समाजवाद की आत्मा का भारतीय अवतार

'अति' इधर कहीं अति उधर कहीं, 'अति' ने अन्धेर मचाया है।
कोई कण कण को तरस रहा, अति-उदर किसी ने खाया है।
या तो नचती उच्छृखलता, अथवा मुर्दापन छाया है।
'अति' का यह अति अन्धेर देख, प्रभु निरतिवाद बन आया है॥

प्रणेता –

श्री दरबारीलाल सत्यभक्त

संस्थापक—सत्यसमाज

कुलपति-सत्याश्रम वर्धा [सी पी]

अगस्त १९३८ ई.

मूल्य छह आने

प्रकाशक के दो शब्द

पूज्य सत्यभक्तजी ने कुछ समय पहिले सत्यसमाज की इक्कीस मॉगे जनता के सामने रक्खी थी। इन मॉगोपर आचार्य महावीर प्रसादजी द्विवेदी, देशभक्त प सुन्दरलालजी, श्री किशोरलालजी मशरूवाला, श्री धर्माधिकारी, श्री जनरल अवारी, धारासभाओ के कुछ सदस्य तथा अन्य सज्जनो ने अपने अपने मत प्रगट किये थे। तब आवश्यकता मालूम हुई कि मागो का भाष्य किया जाय। जब वह किया गया तब निरतिवाद के नाम से एक वाद, तथा एक पुस्तक ही तैयार हो गई जो आपके सामने है। जिसे आज साम्यवाद या समाजवाद कहते है वह इसमे नही है पर जो कुछ है वह समाजवाद के उद्देश को पूरा कहता है। इसलिये पूज्य सत्यभक्तजी ने यह ठीक ही कहा है कि यह समाजवाद की आत्मा का भारतीय अवतार है। यह योजना देश के ही नही, विश्व के सामने एक नई साफ और व्यावहारिक योजना है जो धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रो मे पथ-निर्माण करती है।

सत्यसमाज की संस्थापना के बाद श्री सत्यभक्तजी को यह अनुभव हो रहा था कि आज के युग मे राजनीति और अर्थ शास्त्र पर प्रभाव डाले बिना अन्य क्षेत्रो मे सुधार कठिन है। क्रान्ति या सुधार एकागी नही होता वह अपना असर चारो तरफ डालता है। श्री सत्यभक्तजी धर्म और राजनीति को समाज-शास्त्र का ही एक अग मानते है इसलिये यह कैसे हो सकता था कि सत्यसमाज इन विषयो पर अपना कोई सन्देश जगत के सामने न रक्खे।

श्री सत्यभक्तजी जो साहित्य निर्माण कर रहे है वह पूर्ण निःपक्ष और अमर है सत्य और अहिंसा के व्यावहारिक रूपो की मूर्त्ति है जनकल्याण का सुगम और साफ रास्ता है।

पर इसे अच्छी तरह समझने की जीवन मे उतारने की और उसके लिये नि स्वार्थ सगठन की आवश्यकता है। इसके लिये हम आप सबको प्रयत्न करना चाहिये।

—सूरजचंद डॉगी

प्रकाशक,
—सूरजचंद डॉगी
सत्य सन्देश कार्यालय
वर्धा सी पी.

मुद्रक,
—मैनेजर
सत्येश्वर प्रिन्टिंग प्रेस
वर्धा सी. पी.

निरतिवाद

प्रारम्भिक

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' अति को सब जगह रोकना चाहिये। ससार मे पूर्ण समता का होना असभव है और वर्तमान की विषमता भी सही नहीं जा सकती। ये दोनो ही अतिवाद है। मार्ग वीच मे है। इन दोनो अतिवादो को छोडकर मध्यका समन्वयात्मक मार्ग **निरतिवाद** है। जीवन की सभी बातो को लेकर निरतिवाद के अनुसार विचार किया जा सकता है। परन्तु मुख्यता धन की है। क्योकि इतिहासातीत काल से जगत के अधिकाश आन्दोलन अर्थ-मूलक रहे है अथवा उनके किसी कोने मे अर्थ अवश्य रहा है। आज तो यह समस्या और भी जटिल है। यन्त्रो ने जहा मानव समाज को हरएक दिशा मे द्रुतगामी बना दिया है वहा आगे पीछे का भेद भी विकट कर दिया है। एक तरफ असख्य धनराशि है तो दूसरी तरफ पीठ से मिला हुआ पेट है। यह विषमता इतिहासातीत काल से है पर आज यह विकटाकार धारण कर चुकी है।

धर्मों ने जहा जीवन मे अनेक समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न किया है वहाँ अर्थ समस्या को भी हल करने की कोशिश की है। हिन्दू-धर्म मे इसीलिये दान और त्याग को महत्त्व है उसकी गिनती दश धर्मों मे की गई है। अपरिग्रह धर्म माना गया है। जैन और बौद्ध धर्म ने परिग्रह को पाप माना है। त्याग और दान की महिमा गाई है। जीवन की आवश्यकताएँ कम से कम करके अपना सर्वस्व छोड़ देने का आदर्श बतलाया गया है। ईसाई धर्म मे इसीलिये अपना धन गरीबो को बाँट देने का उपदेश है और यहा तक कहा गया है कि सुई के छिद्र मे से ऊँट निकल जाय तो निकल जाय पर स्वर्ग के द्वार मे से धनवान नहीं निकल सकता। इसलाम मे इसीलिये व्याज को हराम बताया गया है। गरीबो की सहायता पर जोर दिया है। समान बँटवारे का तथा परिश्रम करके खाने का विधान है।

धर्मों के इस प्रयत्न से मानव जाति ने काफ़ी लाभ उठाया है। पर समस्या हल नही हो पाई। दान की प्रथाने गरीबो को कुछ सहायता दी तथा त्याग मे सम्पत्ति के अधिकारी बनने का दूसरो को अवसर दिया। पर इससे पूर्ण तो क्या पर्याप्त सफलता भी नहीं मिली। और आज तो दान और त्याग विकृत और दुर्लभ भी हो गये हैं इसलिये जटिलता और बढगई है।

दान से जहा थोडी बहुत सुविधा मिलती है वहां उसमे एक दोष भी है । इससे दीनता और आलस्य बढता है । दान तो सिर्फ अपाहिजो और सार्वजनिक कार्यों और ऐसी ही सस्थाओ के लिये उपयोगी है । बेकारो का पेट भरने के उद्देश्य से जो दान दिया जायगा उससे लोग आलसी और दीन बनेगे । उनका मनुष्यत्व नष्ट हो जायगा । इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि सब को काम और रोटी मिले । आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिये हम कौन से पथ से चले इसका निर्णय हमे करना चाहिये ।

साम्यवाद अव्यवहार्य

यूनान मे इस समस्या को हल करने के लिये प्लेटोने प्रयत्न किया था । पर वह प्रयत्न सफल न हो सका । वह आर्थिक साम्यवाद का आदर्श रूप था । वह साहित्य की सामग्री बना । इसके बाद इस विषय के आचार्यों मे जिनका नाम विशेष रूप मे लिया जाता है वे है कार्लमार्क्स । इनके विचार अवश्य बहुत अश मे सफल हुए और रूस सरीखे पिछडे हुए विशाल देश मे साम्यवादी शासनपद्धति प्रचलित हुई ।

साम्यवाद के नाना रूप है । हर तरह की पूर्ण समानता तो असम्भव ही है । जैनियोने इस प्रकार की समानता की एक कल्पना अवश्य कर रक्खी है पर वह आदर्श होने पर भी निरी कल्पना है । ऐसा युग न कभी था न आयेगा जब समाज मे मूर्ख विद्वान का, रोगी नीरोग का, शरीर से ऊँचे नीचे का, अल्पायु दीर्घायु का, निर्बल बलीका, सुन्दर असुन्दर का भेद मिट जाय और सम्पत्ति का कण कण सार्वजनिक हो जाय । शास्य शासक आदि कुछ न रहे और परम शान्ति परमानन्द विराजमान हो । यह कल्पना सुन्दर है आदर्श है, चाहने योग्य है । पर कल्पना है और असम्भव है । इससे इतना ही कहा जा सकता है कि जैन धर्म चरम सीमा के साम्यवाद का प्रचार इस दुनिया मे सुखकर समझता है ।

इससे उतरती व्यवस्था मे कुछ लोग साम्पत्तिक समानता की कल्पना करते है और एक तरह से कुटुम्ब–व्यवस्था को भी नष्ट कर देना चाहते है । प्रत्येक पुरुप हरएक स्त्री का पति हो प्रत्येक स्त्री हरएक पुरुप की पत्नी हो, प्रत्येक बच्चा समाज की सन्तान हो, योग्यतानुसार सब लोग काम करे, गाव भर का एक भोजनालय हो, उपभोग के साधन सब को बराबर मिले और जमीन मकान दूकान कारखाने आदि सभी सरकारी हो ।

यह व्यवस्था बडी सुन्दर मालूम होती है ऐसा हो सके और शान्ति रह सके तो वैकुण्ठ ही पृथ्वी पर नजर आने लगे । पर इसे प्राप्त करने के लिये जितने दिन लगेगे उसके सौवे भाग समय तक भी यह टिकाई नही जा सकती । मानव मे जो स्व और स्वकीय का मोह है उसे दूर करना अशक्य है । स्व का सघर्प मिटाया नही जा सकता । इस व्यवस्था मे स्व का इतना सघर्प होगा कि उसे रोकने के लिये अकुश लगाना पडेगे और वही से फिर विपमता शुरू हो जायगी ।

मनुष्य आलस्य का पुजारी है । दार्शनिकोने जो मोक्ष की कल्पना की है वह भी अनन्त आलस्य के सिवाय और कुछ नही है । आज जो एक के बाद एक आविष्कार हो रहे है वे सब परिश्रम घटाने, आराम पहुँचाने अर्थात् आलस्य की उपासना के लिये है । मनुष्यको अगर यह मालूम हो कि हमको हर हालत मे भर पेट रोटी मिलेगी ही और अधिक करने से अधिक कुछ मिलने

मूल बात अर्थ की है। आजकल साम्यवाद के आन्दोलन मे आर्थिक साम्य ही मुख्य है। पर क्या यह सम्भव है ? यह बात तभी सभव है (१) जब प्रत्येक मनुष्य की आमदनी एक समान हो (२) उसका खर्च भी एक समान हो (३) धन सचय करने का किसी को अधिकार न हो। पर क्या ये तीनो बाते सम्भव है ? क्या इससे शान्ति सुव्यवस्था और उन्नति हो सकती है ?

पहिले समान आमदनी की बाते लेले। इस मे सब से बडी बाधा यह है कि प्रत्येक मनुष्य की योग्यता और सेवा एक सरीखी नहीं होती। न सभी सेवाओ का मूल्य एक सरीखा किया जा सकता है। बर्तन मलने या झाडू देनेवाली एक मजदूरिन और नये नये आविष्कारो के लिये दिन रात सिर खपानेवाला और प्राणो को भी दावपर लगा देने वाला एक वैज्ञानिक, इन दोनो की सेवा एक सरीखी नहीं हो सकती। अगर सबकी सेवा का मूल्य एक सरीखा हो जाय तो मनुष्य अधिक से अधिक काम करने के बदले कम से कम काम करने की ओर झुकेगा। न तो योग्यता बढाने की तरफ उसका ध्यान जायगा न योग्यता का अधिक उपयोग करने की तरफ। इसलिये सब मनुष्यो की आमदनी एक सरीखी नहीं हो सकती। हा, यह हो सकता है और होना चाहिये कि आमदनी मे जमीन आसमान का अन्तर न हो। एक आदमी पाच रुपया महीना पाये और दूसरा दस हजार या बीस हजार रुपया महीना। यह अन्धेर जाना चाहिये। अन्तर रहे पर वह आवश्यक और उचित हो। अन्तर रहना अनिवार्य है। इस बात को साम्यवादी भी स्वीकार करता है। इस प्रकार जब आमदनी मे अन्तर है तब पूर्ण आर्थिक साम्यवाद नही हो सकता।

वाला नही है तब वह कम से कम काम करने की कोशिश करेगा। नये नये बहानो का आविष्कार होगा। अगर आप उन बहानो पर ध्यान न देगे तो उस उपेक्षा की चक्की मे सच्चे पीडित भी पिस जॉयगे। नकली बीमारो के साथ असली बीमार भी पिस जॉयगे। डॉक्टरो से परीक्षा कराई भी जाय तो रोगी-जिसमे मौके मौकेपर सभी लोग शामिल होते है—डाक्टरो की कृपा के भिखारी होगे। रोगियो से डाक्टरो को कुछ मिल तो नही सकता इसलिये उनके द्वारा उपेक्षा और तिरस्कार होगा। रोगियो मे दीनता आयगी। धीरे धीरे कृपावान् और कृपोपजीवीका भेद बडे भयकर रूप मे मनुष्यता का सहार करने लगेगा। यहा अभी सकेत मात्र किया है। विस्तार से अगर इसका चित्रण किया जाय तो उससे हम घबरा उठेगे।

कौटुम्बिक व्यवस्था को नष्ट कर देने का अर्थ होगा मनुष्यता को तिलाञ्जलि देना। इससे दाम्पत्य की सुविधाएँ और आनन्द नष्ट हो जायगा अधिकाश सन्तान वात्सल्यहीन रहेगी और उसमे हृदय हीनता आ जायगी। पुरुष नयी नयी नारियो की तलाश मे और नारी नये नये पुरुषो की तलाश मे सदा व्यस्त रहने लगेगे, सारा राष्ट्र एक प्रकार का वेश्यालय बन जायगा। इसलिये कौटुम्बिक व्यवस्था को नष्ट कर देना अत्यन्त अकल्याणकर है। सच पूछा जाय तो यह साम्यवाद का कल्पना चित्र है, स्वप्न है। जहा साम्यवाद का प्रचार हुआ वहा भी कौटुम्बिक व्यवस्था तोड़ी नहीं गई। विवाह बन्धन ढीला किया गया और काफी ढीला किया गया पर इससे कौटुम्बिक व्यवस्था नष्ट नही हुई और यह ढीलापन छोड देना पडा, इसलिये कौटुम्बिक व्यवस्था को नष्ट कर देने की बात व्यर्थ है।

किसी आदमी को खर्च करने के लिये विवश नहीं किया जा सकता। इसलिये समान आमदनी मे भी सचय हो सकता है फिर न्यूनाधिक आमदनी मे तो सचय और भी अधिक सभव है। तीसरी बात सचय के अधिकार को रोकना है यह भी अशक्य है। इस विषय मे ज़बर्दस्ती की जाय तो अन्याय होने की पूरी सम्भावना है (अमुक अश मे सचय की आवश्यकता भी है) इस प्रकार सचय होना मानव प्रकृति को देखते हुए अनिवार्य है। हा, उस पर अकुश लगाये जा सकते है और लगाना चाहिये। अति सचय न हो, सचय सचय को बढानेवाला न हो इसका विचार रखना आवश्यक है।

हमारे सामने तीन मार्ग है—१ सचय की मात्रा और प्रकार का निर्णय सरकार करे और इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का आर्थिक सूत्र सीधा सरकार के हाथ मे रहे। २ व्यक्ति को इस विषय मे पूर्ण स्वतन्त्रता हो वह किसी भी प्रकार धन पैदा करे और कितना भी सचय करे इस पर अकुश न हो। ३—व्यक्ति को आर्थिक स्वातन्त्र्य हो पर उसके दुरुपयोग को रोकने के लिये तथा बेकारी हटाने के लिये सरकार का अर्थात् समाज का पर्याप्त अकुश हो। पहिला मार्ग **साम्यवाद** का है दूसरा मार्ग **पूंजीवाद** का और तीसरा **निरतिवाद** का।

पहिले मार्ग मे सात खराबियाँ है:—[क] व्यक्तित्व के विकास का निरोध, [ख] दासता, [ग] कर्तव्य मे आनन्द की कमी और बोझ का अनुभव, [घ] सरकार या अधिकारियो की निरकुशता रोकने की अक्षमता, [ङ] रुचि की अतृप्ति का कष्ट, [च] निम्न श्रेणी के कार्यकर्ताओ के चुनाव मे बाधा और उसके मन का असन्तोष, और अधिकारियो का पक्षपात अन्धाधुन्धी, [छ] सरकार के ऊपर असह्य बोझ या शक्ति के बाहर उत्तरदायित्व-इससे पैदा होनेवाली मँहगाई।

(क) यहा व्यक्तित्व-विकास-निरोध के दो कारण है। पहिला तो यह कि सरकार के ऊपर निर्भर हो जाने से मनुष्य मे उत्तेजना का अभाव हो जाता है। जैसे जगल मे घूमने वाले शेर और पालतू शेर मे अन्तर है वैसा ही अन्तर यहा हो जाता है। 'कुछ विशेष लाभ तो है ही नही फिर क्यो सिर खपाये' इस प्रकार की मनोवृत्ति विकास को रोकती है। दूसरा कारण यह कि अगर इस मनोवृत्ति को दबा भी दिया जाय तो भी मनुष्य को कार्य करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता न होने से विकास रुक जायगा। आर्थिक सूत्र सीधा सरकार के हाथ मे होने से प्रत्येक मनुष्य नौकर हो जायगा। इस प्रकार वह एक बडी भारी मशीन का पुरजा बनकर रह जायगा। जीवन-निर्वाह के लिये इच्छानुसार कार्य चुन लेना, उस पर नये ढग की आजमाइश करना अत्यन्त दुर्लभ हो जायगा। इसीसे व्यक्तित्व का विकास रुकेगा।

(ख) आर्थिक सूत्र सर्वथा पराधीन हो जाने से मनुष्य मे दासता आ ही जायगी। नौकर को तो इतनी सुविधा मिलती है कि एक जगह न पटी दूसरी जगह चले गये, दूसरे गाव चले गये, दूसरा मालिक देख लिया पर सरकार के हाथ मे सब का आर्थिक सूत्र आ जाने से यह सुविधा और स्वतन्त्रता नही रहेगी। अब एक जगह काम छोडकर दूसरी जगह जाना तुम्हारे हाथ मे नही है और सरकार के सिवाय दूसरा कोई मालिक नही है इसलिये जीवन भर सरकार की ही नौकरी करना पडेगी इस प्रकार का अटूट

बन्धन दासता ही है। इससे देशभर मे दासता के समान मनोवृत्ति और वैसे ही कष्ट बढ़ जायेगे।

(ग) इस प्रकार की दासता के साथ थोड़ा भी काम करना पड़े तो वह असह्य होता है और स्वाधीनता के साथ इससे कई गुणा कष्ट भी सहन हो जाता है। एक दूकान का मालिक सुबह से रातकी दस ग्यारह बजे तक दूकान पर आनन्द से बैठ सकता है जितने अधिक ग्राहक आवे उतना ही अधिक खुश होता है क्योंकि वह अपने को स्वतन्त्र अनुभव करता है। पर नौकर की मनोवृत्ति ऐसी नही होती। वह थक जाता है घबरा जाता है उसे विवशता का अनुभव होता है। जहा स्वेच्छा से नहीं किन्तु विवशता से दूसरो की आज्ञा मे रहकर काम करना पड़ता है वहा थोड़ा भी कार्य बोझ मालूम होता है। यद्यपि यह परिस्थिति आज भी है और चिरकाल तक रहेगी परन्तु आज सौ मे दस आदमियो के लिये है पर कल सौ मे निन्यानवे के लिये हो जायगी। यह समाज की अवनति है।

(घ) जब हमारा पेट भी सरकार की मुट्ठी मे पूरी तरह आ जायगा तब सरकार के आसन पर बैठे हुए व्यक्ति काफी निरकुश हो जायेंगे। अज्ञानवश या स्वार्थवश की गई उन की भूलों का सुधार असाध्यसा हो जायगा। आज हम कहीं से भी पेट भर रोटी खाकर उन से लड सकते है पर तब तो पेट उनकी मुट्ठीमे रहेगा तब उनसे लड़ना कैसे होगा ? न तो हमे कहीं से दान मिल सकेगा न हम सचय ही कर सकेगे तब किस भरोसे जीवित रहकर सरकार का सामना कर सकेगे।

(ङ) सारे कारबार सरकार के हाथ मे चले जाने के कारण प्रायः सभी मनुष्यो की रुचि अतृप्त रहेगी। अतृप्त रहेगी सो रहेगी पर तृप्त होने की आशा भी इतनी क्षीण हो जायगी कि उसे निराशा कहना होगा। यह और कष्ट है। एक आदमी खाने पीने की इतनी पर्वाह नहीं करता पर यह चाहता है कि मै सारे देश मे या विदेशो मे कुछ समय भ्रमण करू अथवा और किसी कार्य मे उसकी रुचि है जीविका के लिये भी वह ऐसा ही कार्य चाहता है अथवा अर्थ-सचय द्वारा वह अपनी इच्छा की तृप्ति करना चाहता है पर सरकार के हाथ मे पूर्ण आर्थिक सूत्र होने से यह बहुत कठिन है। यद्यपि इस प्रकार की अतृप्त आकाक्षाये आज भी रहती है पर उस समय उनकी मात्रा बढ़ जायगी तथा निराशा तो और भी अधिक।

[च] यदि प्रत्येक मनुष्य को समान साधन मिले वह समान परिस्थिति मे रक्खा जाय उस के हृदय पर समानरूप मे सस्कार डाले जॉय ता प्रायः सभी या अधिकाश मनुष्य समान योग्यता के होगे। ऐसी हालत मे निम्न श्रेणी के काम करनेवाले अधिकाश लोग कहॉ से आयेगे? कोयले की खानो मे कौन काम करेगा सडक पर गिट्टी कौन कूटेगा खेती आदि कामो के लिये कितने आदमी तैयार होगे ? अगर सब को समान साधन न दिये जाये जिससे निम्न श्रेणी के व्यक्ति भी गिल सके तो यह अन्याय होगा।

कहा जा सकता है कि ऐसा आज भी तो होता है। होता है, पर इससे मनुष्य इतना दुःखी नहीं होता। आज का समाज व्यक्ति से कहता है कि तुम अपनी सारी शक्ति लगाकर स्वतन्त्रता से अपना स्थान बनाओ और भाग्य से जो तुम्हे पैतृक साधन सम्पत्ति मिले उसका भी उपयोग करलो इतने पर भी अगर तुम ऊँचे नहीं पहुँचते

तो मै [समाज] क्या करू ? व्यक्ति इस सचाई को मान कर चुप रहता है। वह किसी को दोष न देकर अपने भाग्य का फल समझ कर चुप-चाप काम करता है। उठने की कोशिश करता है पर यदि नहीं उठ पाता तो वह समाज पर टूट नही पडता। क्योकि जिम्मेदारी समाज पर नहीं उस पर है। साम्यवाद मे समाज पर ही सारी जिम्मेदारी आ जाती है व्यक्ति बहुत गौण हो जाता है ऐसी हालतमे वह लघुता सहन नहीं कर सकता। हम घर मे कैसा भी रूखा सूखा खा सकते है परन्तु निमत्रण मे जाने पर घर से अच्छा भोजन करके भी हम उस हालत मे सतुष्ट नही हो सकते जब कि दूसरो को हम से अच्छा भोजन परोसा जा रहा है। साम्यवाद मे कोई भी छोटा बनने को तैयार न होगा और होगा तो उसे अन्याय का कडुआ अनुभव होता ही रहेगा। असन्तोष और ईर्षा उ-के जीवन को दु खी करने के साथ दूसरो को भी दु खी बनाये रहेगी। अगर सरकार साम्यवाद का दावा न करे न आर्थिक सूत्र सीधे अपने हाथ मे रक्खे तो व्यक्ति अपनी परिस्थिति मे बहुत कुछ सन्तुष्ट रहेगा। न अधिकारियो को उसके जीवन के दुरुपयोग करने का इतना अवसर मिलेगा न उसे अधिकारियो पर इतना रोष होगा।

सरकार के ऊपर रक्षण, शिक्षण, न्याय, नियन्त्रण कर–ग्रहण आदि का जो बोझ है वह कुछ कम नही है। सरकार कोई एक व्यक्ति न होने से उसके द्वारा जो कार्य होते है उन पर व्यवस्था सम्बन्धी बहुत खर्च बढ जाता है। मै एक मकान बनवाऊॅ और सरकार भी वैसा मकान बनवाये तो उसमे खर्च दूने से भी अधिक आयगा। इसका कारण यह है कि आधे से अधिक पैसा व्यवस्था मे खर्च हो जाता है। मजदूरो की देखरेख को एक निरीक्षक चाहिये। निरीक्षक कोई बेईमानी न करे इसके लिये एक चेकर चाहिये, काम ठीक हुआ कि नही हुआ इसलिये इजीनियर चाहिये, हिसाब ठीक है कि नही इसके लिये ऑडीटर चाहिये, ढेर भर कागज फाइले और उस को गूदने के लिये क्लर्क चाहिये। इन सब कारणोसे सरकारी काम बहुत महॅगा पडता है। इसलिये ठेका देने का रिवाज है। ठेके का काम सस्ता पडता है लेकिन ठेकेदार पर नियन्त्रण और परीक्षण के लिये भी काफी खर्च होता है। और ठेका भी वास्तविक मूल्य से अधिक मे दिया जाता है। यह बात इसीसे समझी जा सकती है कि ठेकेदार अधिकारियो को हजारो रुपयोकी रिश्वत देकर भी लखपति बन जाते है।

कहा जा सकता है कि ये उदाहरण किसी बिगडी हुई सरकार के नमूने है साम्यवादी सरकार ऐसी नहीं हो सकती।

ठीक है। माना कि ऐसी नहीं हो सकती सम्भवत प्रारम्भ मे ऐसी नही हो सकती, पर दस बीस वर्षो के बाद वहा भी ऐसी ही परिस्थिति आ जायगी अथवा अन्तर रहेगा तो उन्नीस बीस जैसा ही रहेगा। बात यह है कि जबतक मनुष्य अपने व्यक्तित्व का अनुभव करना नही भूलता व्यक्तित्व की महत्त्वाकाक्षा नष्ट नहीं होती तबतक उपर्युक्त उदाहरण हरएक सरकार मे मिलेगे। हा, उनकी मात्रा मे थोडा बहुत अन्तर अवश्य आ सकता है।

दूसरी बात यह कही जा सकती है कि अच्छा महॅगा पडता है तो पडने दो देश का पैसा देश मे तो रहता है। परन्तु यह तर्क ठीक नही। पूॅजीवाद मे भी देश का पैसा देश मे रहता है,

एक चोर पडौसी की चोरी करले तो भी देश का पैसा देश मे रहेगा इसीलिये इन सब का समर्थन नहीं किया जा सकता । इस तर्क मे दूसरा दोष यह भी है कि पैसे की दृष्टि से महँगाई का दोष भले ही न हो पर परिश्रम की दृष्टि से तो है ही । कोई चीज महँगी पडी इसका यह अर्थ अवश्य है कि उसमे बहुत से मनुष्यो को बहुत परिश्रम करना पडा । इस प्रकार सरकार के हाथ मे जो कारबार जाता है वह अधिक शक्ति लेकर पूरा होता है । फिर भी बहुत से काम ऐसे है कि व्यक्ति के हाथसे हो नहीं सकते इसलिये महँगे पडने पर भी सरकार के हाथसे कराना पडते है । रक्षण न्याय आदि ऐसे ही कार्य है ।

परन्तु यदि प्रत्येक मनुष्य का धधा रोजगार भी सरकारी हो जावे इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य की आजीविका का बोझ सरकार के ऊपर पडे तो वह बोझ कितना भारी होगा ? कितना मँहगा होगा ? उसकी कल्पना ही मुश्किल से की जा सकती है ।

अभी अभी जहा साम्यवादी शासन प्रचलित हुआ है वहा भी प्रत्येक व्यक्ति का बोझ सरकार नही उठा सकी और धीरे धीरे सरकार ने लौटना शुरू कर दिया है । व्यक्ति की आजीविका व्यक्ति के हाथ मे रखने की बहुत कुछ स्वतन्त्रता देना पडी है । और इसी लौटनेकी दिशामे प्रगति हो रही है ।

व्यवहार मे आने पर और भी कठिनाइयाँ दिखाई दे सकेगी । सबसे बडा प्रश्न मानव स्वभाव और प्राकृतिक विषमता का है इससे साम्यवाद स्थायी नहीं हो सकता । जब वह स्थायी होने लगता है तब पूँजीवाद की ओर काफी झुकने लगता है । फिर भी मै साम्यवाद को घृणा की दृष्टि से नही देखता । मै तो उसे आदर्श समझता हू इसलिये पूजा करता हू । पर वह आदर्श है, दिशा-दर्शन करा सकता है पर अप्राप्य है । इसलिये व्यवहार की चीज नहीं है ।

हा, व्यवहार मे भी कभी कभी उसका उपयोग हुआ है या हो सकता है पर वह झाडू की तरह ही हो सकता है । कमरे मे अगर कचरा पडा हो और बैठने को जगह न हो तो झाडू लगा कर कचरा साफ किया जा सकता है साफ जगह निकाली जा सकती है पर इसीलिये झाडू बैठने के लिये उपयुक्त आसन नहीं हो जाता । सफाई करके उसे भी अलग कर देना पडता है । पूँजीवाद के द्वारा जब विषमता का कचरा फैल जाता है तब साम्यवाद की झाडू से सफाई की जा सकती है पर बाद मे वह साम्यवाद भी हट जाता है ।

कभी कभी ऐसी भी परिस्थिति आती है जहा झाडू काम नही करती या उसकी जरूरत नहीं मालूम होती वहा दूसरी तरह के साधनो का उपयोग किया जाता है । भारतवर्ष की परिस्थिति अभी ऐसी ही है-यहा का इलाज **निरतिवाद** से ही हो सकता है ।

पूँजीवाद पापरूप

साम्यवाद अव्यावहारिक हो करके भी निष्पाप है जब कि पूँजीवाद व्यावहारिक होकर भी पाप है,। पूँजीवाद का अत्याचार यह है कि उसमे सेवाके बदले मे धन नहीं मिलता बल्कि धनीको मुफ्त मे धन मिलता है । इस प्रकार बिना किसी सेवा के धनियों का धन बढता जाता है और सेवा करने पर भी निर्धनो की निर्धनता बढती जाती है । इस प्रकार एक तरफ आवश्यकता से अधिक धन और दूसरी तरफ किसी तरह पेट भरने के लिये भी मुहताजी, ऐसी असह्य विषमता पैदा हो जाती है ।

जिस समय मनुष्य वन्य—जीवन से निकल कर सामाजिक जीवन मे आया उसने भौतिक विज्ञान का पाठ पढा समाज रचना की व्यवस्था बनाई सुव्यवस्था के लिये कार्य का विभाग किया निश्चिन्तता के लिये कुछ बचाना और रक्षित रखना सीखा तभी से समाज मे धन सग्रह और आर्थिक विपमता आई। मनुष्यो मे स्वाभाविक विपमता होने से आर्थिक विपमता स्वाभाविक थी पर इस का मूलरूप संग्रह नहीं भोग था। जो अधिक बुद्धिमान और अधिक श्रमी थे वे अपने कीमती और अधिक कार्य का अविक मूल्य मॉगे यह स्वाभाविक था। समाज दो तरह से उसका मूल्य चुका सकता था। एक तो यह कि उसने जितना अधिक और कीमती काम किया है उसके अनुसार उसकी अविक सेवा की जाय और भोगोपभोग की कीमती सामग्री दी जाय। जैसे उसको स्वादिष्ट भोजन मिले, रहने के लिये अच्छा स्थान मिले, कोई पगचपी करदे मालिश करदे इत्यादि। दूसरा यह कि उससे दूसरे दिन काम न लिया जाय और पहिले दिन की सेवाके बदले मे ही उसे दूसरे दिन भी भोगोपभोग की सामग्री दी जाय। इन दो आधारो पर ही विनिमय या लेनदेन चलने लगा। किसी तरह किसीने अपनी एक दिन की सेवा को चार दिनके जीवन निर्वाह के योग्य समझा किसीने आठ दिनके। इस प्रकार वे लोग सामग्री का सग्रह करने लगे। अगर यह सग्रह जीवन भरके लिये होता तब तो ठीक था। जीवन के अन्त तक या तो वह सारी सामग्री भोग डालता या दान मे दे देता दोनो ही दृष्टि से समाज का लाभ था। क्योकि अगर भोगता तो वह सारा अन्न खा तो नहीं सकता था। वह तो उसको देकर किसी से मालिश कराता किसी से पैर दबवाना, हवा कराता इस प्रकार सेवा लेकर वह सम्पत्ति समाज को दे देता। अगर दान करता तो भी दे देता। इस प्रकार उसकी विशेप सेवा का बदला भी मिल जाता और समाज की भी हानि न होती उसकी सपत्ति सब जगह बटकर सबको जीवित और सुखी रखती।

परन्तु सम्पत्ति का यह अधिकार जीवन पर्यन्त के लिये ही न रह सका वह वश परम्परा के लिये पहुँचा। मैने जो सेवा करके सम्पत्ति जोडी उसका मुझे अपने जीवन मे ही दान या भोग कर लेना चाहिये था पर जब मैने वह सम्पत्ति अपने बेटेको देदी तब समाज को धक्का लगा। समाज ने तो वह सम्पत्ति या जीवन-सामग्री तुम्हे तुम्हारी सेवा को प्रमाणित करने के लिये एक प्रमाण पत्र के रूप मे दी थी। समाज को आशा थी कि तुम अपनी सेवाके बदले मे प्रतिसेवा लेकर वह सम्पत्ति वापिस कर दोगे। पर तुमने विश्वासघात करके वह सम्पत्ति वापिस न करके अपने बेटे को दे दी। और समाज को उतने अश मे दु खी होना पडा। यही है सग्रह-कर्ता की पापता।

कहा जा सकता है कि उस समयमे जब कि धन अनाज आदि जीवन सामग्री के रूप मे रहता था सग्रह करना अवश्य पाप था। परन्तु रुपये पैसे के रूप मे धन सग्रह मे क्या पाप है क्योकि यह जीवन-सामग्री नहीं है।

परन्तु रुपयो पैसो का सग्रह करना और जीवन सामग्री का सग्रह करना एक ही बात है। क्योकि जीवन सामग्री को रखने और उसे प्राप्त करने का उपाय रुपया पैसा ही है। रुपया पैसा रोक लेने से जीवन सामग्री आपसे ही रुक जाती है। इसलिये रुपयो पैसो के बहाने से परिग्रह क्षम्य नहीं हो सकता।

इस प्रकार लोगोने अनिर्दिष्ट काल के लिये जीवन सामग्री रोक कर जहा विश्वासघात किया वहा समाज के व्यक्तियो के संकट का दुरुपयोग करके एक और अनर्थ किया। सम्पत्ति एक तरफ रुक जाने से दूसरे लोगो का जीवन–निर्वाह कठिन हो गया। उनने यह सोचकर कि आज कही से लेकर काम चलाओ कल फिर किसी तरह उपार्जन करके देदेगे। इस विचार से वे लोग धनियो के पास उधार माँगने आये। पर धनियोने कहा कि ले जाओ पर हम दसके बदले ग्यारह लेगे। यह शर्त मजूर हो तो हम देते है नही तो हमे क्या गर्ज पड़ी कि हम तुमको उधार दे। इस प्रकार धन-सग्रह करके विश्वासघात किया था सो तो किया ही था अब दूसरा पाप यह होने लगा कि बिना सेवा दिये ही धन प्राप्त करना शुरू कर दिया गया। व्याज खाना इसीसे पाप है। आज हम शेयर लेकर, अपनी चीज भाडे देकर, तथा अन्य उपायो मे जो बिना परिश्रम के धन पैदा करते है वह सब व्याज है मुफ्तखोरी है, दूसरो की गरीबी बढाने वाला है दूसरे के सकट का दुरुपयोग करने से निर्दयता है। इन कारणो से पाप है। प्राय सभी धर्मो मे परिग्रह को जो पाप कहा गया है इसका यही कारण है। इसी का नाम पूँजीवाद है। अर्थात् **अनिर्दिष्ट काल के लिये या वंशादिपरम्परा के लिये पूँजी पर अधिकार रखना और किसी न किसी तरह व्याज खाना यही पूँजीवाद है**। इसके सहारे से और भी बहुत से अनर्थ तथा बेईमानियाँ पैदा होती है। अपनी साधारण व्यवस्था शक्ति को बहुमूल्य बताना, मनमाना पारिश्रमिक लेना ये सब पूँजीवाद के साथ रहने वाले अनर्थ है। इस पूँजीवाद ने ही जहा इनेगिने कुबेर पैदा किये है वहा करोडो भिखमगे और कगाल पैदा किये है। नब्बे फीसदी मनुष्य आज पूँजीवाद के चक्रमे पिसकर मनुष्यता खोकर पशु-जीवन बिता रहे है। इसलिये आवश्यक है कि समाज की शान्ति सुख के लिये मौलिक नियमो के पालन के लिये सबके साथ न्याय करने के लिये पूँजीवाद दूर कर दिया जाय।

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर, एक दल दूसरे दल पर, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर जो टूट रहा है उसे शिकार बना रहा है उसका कारण यह पूँजीवाद है। पूँजीपति इतना बुरा नही है जितना कि पूँजीवादी बुरा है।

पूँजीपति वह मनुष्य है जो पूँजी रखता है। पर पूँजीवादी वह है जो सम्पत्तिको सदा के लिये रखना चाहता है और पूँजी के बलपर उसे बढ़ाना चाहता है।

मानव-जीवन मे सग्रह की आवश्यकता तो है ही। प्रतिदिन कमाना और प्रतिदिन खर्च कर डालने की व्यवस्था किसी को भी सुखकर या सुविधा–जनक नही हो सकती। एकाध को हो भी जाय तो बात दूसरी है पर साथ ही उसे दूसरो का ज्ञात या अज्ञात भरोसा रखना पडता है। जनता इसका पालन नही कर सकती। इसलिये **संग्रह अनिवार्य है**। पर सग्रह से सग्रह को न बढाया जाय, वह अनिर्दिष्ट काल के लिये न किया जाय, यथा-सम्भव सग्रह की मात्रा कम हो, अधिक हो जाने पर दानमे लगा दिया जाय इन सब परिस्थितियो मे मनुष्य पूँजीपति तो हो सकेगा पर पूँजीवादी न हो सकेगा। किन किन परिस्थितियो मे किस तरह मनुष्य धन का सग्रह करते हुए भी पूँजीवादी न कहला सके इसके लिये कुछ दिशासूचक नियम दे देना उपयोगी होगा।

१—अगर इस आशय से सम्पत्ति का संग्रह करता है कि भविष्यमे अपना जीवन-निर्वाह करते हुए बिना किसी बदले के समाज-सेवा करूँगा। समाज पर अपने जीवन-निर्वाह का बोझ कम से कम डालूगा या न डालूगा। संग्रह की हुई सम्पत्ति समाजके काम मे लगा दूगा और मरने के बाद समाज को दे जाऊँगा।

२—सन्तानके शिक्षण और नाबालिग अवस्था मे उसके पोषण के लिये जितनी सम्पत्ति आवश्यक है उतनी सम्पत्ति उत्तराधिकारियो को छोड कर बाकी सम्पत्ति दान कर जाऊगा और जीवन मे भी समय समय पर दान करता रहूगा।

३—पूर्वजो से उत्तराधिकारित्व मे पर्याप्त धन मिला है इसलिये धन रखता है। धन बढाता नही है। जितना धन बढाता है उतना दान मे और उचित भोग मे खर्च कर देता है। और मूल धन भी दान मे लगाता रहता है।

४—मूलधन खर्च नही करता किन्तु आमदनी सब खर्च डालता है।

इन चारो श्रेणियो के पूँजीपतियो के लिये यह आवश्यक है कि उनका पैसा कमाने का ढग गैर कानूनी न हो। न कानून का दुरुपयोग किया गया हो। जूआ सट्टा आदि का भी सबध न हो। इस प्रकार के पूँजीपति या धनवान पूँजीवादी नहीं कहे जायेंगे। **निरतिवाद ऐसे पूँजीपतियों का विरोध नहीं करता।** खासकर पहिली और दूसरी श्रेणी का। तीसरी और चौथी श्रेणी को भी वह सह सकता है।

जिस प्रकार पूजीपति होकर भी पूँजीवादी होना आवश्यक नही है उसी प्रकार पूजीवादी होकर भी पूजीपति होना आवश्यक नहीं है। गरीब होकर के भी मनुष्य पूँजीवादी हो सकता है। पूजीपति सौ मे दो चार ही हो पर पूँजीवादी सौ मे निन्यानवे होते है या हो सकते है।

एक मजूर चार छ. आने रोज कमाता है इससे उसकी अच्छी तरह गुजर नही होती पर चार पैसे सट्टेके दाव पर लगाता है तो वह पूँजीपति न होकर के भी पूँजीवादी है। एक मजूर अपने पडौसी को एक रुपया देता है और महीने के अत मे एक रुपये का व्याज भी लेता है तो वह पूँजीवादी है। गरीब होने से हमे यह न समझना चाहिये कि यह पूँजीवादी नही है या असयमी नहीं है। गरीब हो या अमीर सभी किसी न किसी मार्ग से धन पैदा करना चाहते है, न्याय और अन्याय की किसी को पर्वाह नही है (इनेगिने महात्माओ को छोडकर) अगर पर्वाह है तो सिर्फ इतनी कि कानून के पजे मे न फँस जॉयॅ। भिखमगा भी चाहता है और करोड पति भी चाहता है कि सारी सम्पत्ति मेरे घर मे आजाय और वह किसी भी तरह आ जाय। ऐसी हालत मे सभी पूँजीवादी है। और पूँजीवाद जब पाप है तब वे पापी भी है।

जिनके पास पूँजी है वे पापी है और जिनके पास पूँजी नही है वे धर्मात्मा है ऐसा समझने की भूल कदापि नहीं करना चाहिये। यह तो भाग्य की--अकस्मात् की बात समझना चाहिये कि किसी के पास धन है और किसी के पास नहीं है। जिनके पास धन है न तो वे सयमी है जिनके पास धन नही है न वे सयमी है। इसलिये धनवान और गरीब सब पर एकसी दृष्टि रखना चाहिये। धनवानो को विशेष पापी समझने का कोई कारण नही है। विशेष पापी धनवानो मे भी है और गरीबो मे भी है और अनुपात भी उसका बराबर है। निरतिवाद दोनो की परिस्थिति

पर तटस्थता से विचार करता है, वह न तो पूँजी-पतियो को शत्रु समझता है न गरीबो को। हा, पूँजीवाद को वह शत्रु समझता है जो कि अमीर और गरीब सब मे समाया हुआ है इसको नष्ट करने का वह सन्देश देता है।

पूँजीवाद से जो हानियाँ है उसका दिशा-सूचन करने के लिये कुछ हानियो की तरफ सकेत किया जाता है।

१—एक तरफ धन इतना इकट्ठा हो जाता है कि लाखो आदमियो को उसके विना भूखो मरना पडता है।

२—सम्पत्ति के वदले मे जन समाज को सेवा नही मिलती। समाज की सम्पत्ति मुफ्त मे ही वहुत से लोग मार ले जाते है।

३—जहा धन इकट्ठा हो जाता है वहा अनुत्तरदायित्व, ऐयाशी (वेश्या—सेवन मद्यपानादि) आलस्य, निर्बलता, घमड आदि दुर्गुण पैदा हो जाते है और उसके प्रभाव से और भी वहुत से मनुष्यो का पतन होता है वहुत से मनुष्य उनके दुर्गुणी कार्यो के भी शिकार बन जाते है।

४—पूँजी से धन पैदा करने के लिये बहुत से साहूकार लोग भोले प्राणियो को ऋण देकर फँसाते है और इस प्रणाली से सैकडो घर तवाह हो जाते है।

५—दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण भी पूँजीवाद का फल है। जब लोगो को अपने देश मे पूँजी फँसाने के लिये जगह नही रहती या उससे सन्तोषप्रद लूट नहीं हो पाती तब दूसरे देशो पर जाल फैलाया जाता है। उन पर आक्रमण किया जाता है उनकी स्वतन्त्रता छीनी जाती है लाखो आदमियो का कत्ल कर दिया जाता है। अधिकाश अन्तर्राष्ट्रीय जटिलताएँ पूँजीवाद का ही फल है।

६—पूँजी लगाकर नफा के नाम पर लूट मचाने के लिये अनेक अनावश्यक चीजे तैयार की जाती हैं और उन चीजो को खपाने के लिये जन-समाज का अनेक तरह से पतन किया जाता है अर्थात् उसे मार्ग भ्रष्ट किया जाता है। जैसे पूँजी लगाकर युद्ध की सामग्री तैयार करना और उसे खपाने के लिये दो देशो को या दो जातियो को लडा देना। इसके लिये लोगो मे राष्ट्रीयता या जातीयता का ऐसा उन्माद भरना जिससे वे दूसरे देश को शत्रु समझने लगे और लड पडे, राष्ट्र के सूत्रधारो को लॉच रिश्वत देकर युद्ध के लिये तैयार करना, अज्ञात रूपमे ऐसे आक्रमण करा देना जिससे दो देश आपस मे लड पडे इस प्रकार युद्ध सामग्री खप जाय। और भी इसके अनेक प्रकार है। मनुष्य को व्यसनी वनाने वाली चीजे तैयार करके मनुष्य का पतन किया जाता है। मानव-जाति की या दूसरे की कुछ भी दशा हो पर पूँजी-वादी अपनी पूँजी फँसाकर उससे आमदनी निकालने की कोशिश करेगा।

निरतिवाद का रूप

ऊपर वताये हुए साम्यवाद और पूजीवाद दोनो दो दिशाओ की सीमाएं है। एक आसमान की इतनी ऊँची चीज है कि जिसे हम पा नही सकते। अगर किसी तरह उछलकर उसे छू भी ले तो वहा रह नहीं सकते। हमे गिरना पडेगा। पूँजीवाद इतना नीचा है कि वहा के अन्धकार गर्मी और गदगी से दम घुटता है। मार्ग बीचमे है। हमे जमीन पर रहना है। न आसमान मे न पाताल मे। निरतिवाद, पूँजीवाद और साम्यवाद के बीच का स्थान है।

निरतिवाद को समझने के लिये ये चार बाते ध्यान मे रखना चाहिये ।

१—निरतिवाद, साम्यवादको एक काल्पनिक आदर्श समझता है । पर अव्यवहार्य होने से हानिकारक मानता है ।

२—पूँजीवाद को वह पाप समझता है इस लिये उसे नष्ट या मृतप्राय. कर देना चाहता है ।

३—वह पूँजीपतियो को पापी (विशेष पापी) नही समझता है परन्तु उनका पूँजीपतित्व बढने न पावे बल्कि घटकर बेकारो या गरीबोके पोषण मे काम आवे ऐसी योजना करना चाहता है ।

४—वह पूँजीपतियो को एकदम कगाल नही बनाना चाहता परन्तु उनको झटका न लगे इस प्रकार धीरे धीरे उनके पूँजीपतित्व को सीमित करना चाहता है ।

निरतिवाद के सामाजिक आदि अनेक पहलू है, लेकिन ऊपर जो चतु सूत्री दी गई है वह निरतिवाद के आर्थिक पहलू को ही बताती है । इस आर्थिक पहलू को साफ साफ समझने के लिये उसका भाष्य जरूरी है । अगर किसी राष्ट्र मे निरतिवाद का प्रचार हो तो उस राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था कैसी हो, वहा के आर्थिक कानून कैसे हो इसका रेखाचित्र यहा खीचा जाता है ।

१ — बेकारशाला

(क) सरकार की ओर से प्रत्येक जिले के भीतर कम से कम दो और अधिक से अधिक जितने सम्भव हो, उतने ऐसे केन्द्र हो, जहा बेकारो को रहने का प्रबन्ध हो । वहा उन्हे साधारण भोजन और साधारण वस्त्र दिये जॉयॅ । और इसके बदले मे करीब आठ घटे काम लिया जाय ।

ख—बेकारो को घरसे बेकार-शाला तक आने और जाने का खर्च सरकारकी तरफ से हो।

ग—बेकारो को शारीरिक श्रम करने के लिये तैयार रहना होगा । सूत कातना, कपडे बुनना, मिट्टी आदि की चीजे बनाना, फर्नीचर तैयार करना, सडके बनाना, गिट्टी बिछाना, खेती करना बगीचा करना आदि हर काम के लिये तैयार रहना होगा । कठिन काम थोडे समय तक लिया जायगा । शारीरिक शक्ति तथा अन्य योग्यता का भी विचार किया जायगा । उनको उद्योग वगैरह भी सिखाया जायगा जिससे उन्हे बाहर काम मिलने मे सुभीता हो ।

घ—सरकार की यह दृष्टि न रहेगी कि बेकारो के कार्य का बाजारू मूल्य क्या है । कार्य का मूल्य कुछ भी हो पर बेकारो को भरपेट रोटी और कपडे का प्रबन्ध करना सरकार का उद्देश्य होना चाहिये । सरकार के पास कुछ काम न हो तो भी कुछ न कुछ काम लेना चाहिये । कहावत है कि—

खाली न बैठ कुछ न कुछ किया कर ।
कुछ न हो तो पैजामा उधेड कर सिया कर ॥

यह कहावत बेकारो के विषय मे भी लागू रहना चाहिये । जैसे कुछ न हो तो जगल के पत्ते बीन लाओ और लाकर जला दो । यह तो एक उदाहरण है असली बात यह है कि बेकारो से कुछ न कुछ काम अवश्य लिया जाय ।

ङ—साठ वर्ष से अधिक उम्र के बूढो से बेकार शाला मे काम न लिया जाय । या उनसे सिर्फ देखरेख का काम लिया जाय । परिश्रम लिया जाय तो इतना ही जितना कि उनके स्वास्थ्य के सॅभालने के लिये जरूरी हो ।

च—बेकार शाला का अधिकारी बेकारो को काम ढूढने का प्रयत्न करता रहे । जिन को जरूरत हो वे भी बेकार-शाला से स्थायी अस्थायी

रूप मे कर्मचारी प्राप्त कर सके ।

छ—आये हुए कार्य को स्वीकार करना या न करना बेकार की इच्छा पर निर्भर रहे ।

प्रश्न—ऐसा होगा तो बहुत से बेकार जिन्दगी भर बेकार शाला से जाना न चाहेगे। सरकार के ऊपर बोझ बने हुए वहीं पडे रहेगे।

उत्तर—ऐसा न होगा। क्योकि बेकार शाला मे भी उसे काम तो करना पडता है। और जो चाहे काम करना पडता है। साथ ही बेकार शाला का जीवन इतना वैभवशाली न होगा कि वह बाहर की स्वतन्त्र जीविका के आनन्द को भुला सके।

ज—बेकार अगर अपने घर पर रहकर ही भरणपोषण चाहे तो सरकार कुछ काम का ठेका देकर उस कुटुम्ब के पोषण के लिये साधारण प्रबन्ध करे। जैसे कम से कम इतने नबर का सूत इतने गज कातकर लाओ या और ऐसा ही कोई काम दे।

शका—[१] बेकार शाला न बनाकर घर पर ही सबको काम दिया जाय और भरणपोषण दिया जाय तो कैसा ?

समाधान—अच्छा है और यथासम्भव यही करना चाहिये। पर हर हालत मे यह सम्भव नही है। किसी बेकार के पास कदाचित् घर न हो तो उसे बेकार शाला मे ही रखना ठीक होगा। अथवा + सरकार के पास घरमे देने लायक पूरा काम न हो बेकार शाला मे ही बहुत से बेकारो को मिलाकर काम कराना हो तो भी बेकार शाला मे रखना ठीक होगा। हा, कोई बेकार घर मे रह कर बेकार-शाला अथवा सरकार ने जहा कार्य के केन्द्र बनाये हो वहा जाकर आठ घटो या नियत घटो तक काम करके घर आ जाना चाहे तो कोई हानि नही।

२ धन संग्रह पर रोक

क—किसी कुटुम्ब के पास एक लाख रुपये से अधिक रुपये हो तो उन अधिक रुपयो का आधा भाग या दो तृतीयाश सरकार मे चला जाय। और यह रकम बेकार-शाला के कार्य मे लगाई जाय।

ख—निम्न लिखित चीजे सम्पत्ति मे न गिनी जॉयॅ पर शर्त यह रहे कि ये चीजे कभी बेची न जॉयॅगी न किसी को भाड़े पर दी जॉयॅगी।

[१] रहने का मकान [२] भोजन सामग्री [३] पहिनने ओढने के कपडे [४] पढने की पुस्तके [५] फरनीचर [६] सजावट की चीजे फोटो चित्र मूर्त्ति खिलौने आदि। [७] घोडा साइकिल, मोटर गाड़ी, तागा आदि [८] भोजन बनाने खाने की सामग्री-वर्तन चौकी आदि। [९] आविष्कार के साधन [१०] इन्द्रियो के विशेष विषय-इत्र, हारमोनियम फोनोग्राफ वीणा आदि वादित्र, इत्यादि।

। अगर ये चीजे व्यापार के लिये रक्खी जॉयॅगी तो सम्पत्ति मे गिनी जॉयॅगी।

॥ सोने चॉदी के आभूषण भी सम्पत्ति मे गिने जॉयॅगे।

||| व्यापार के विशेष साधन भी सम्पत्ति मे गिने जॉयॅगे। जैसे फोटोग्राफर का केमरा सम्पत्ति है।

|||| रुपया पैसा जमीन मकान (निवास के

+ (सरकार का अर्थ है उसी देश के जन मत से बनी हुई सरकार । निरतिवादके प्रकरणमे सब जगह सरकार का यही मतलब समझना चाहिये ।)

अनिरिक्त) आदि तो सम्पात्ति है ही ।

उपर्युक्त दस तरह की चीजो के सिवाय लाख रुपये तक की सम्पत्ति एक कुटुम्ब को रखने का अधिकार रहे । बाकी सम्पत्ति का आधा या दो तृतीयाश सरकार ले ले ।

शका (१)--एक लाख रुपये की सीमा बहुत अधिक है । इसके अतिरिक्त दस तरह की चीजो की जो छूट दी गई है उसके बहाने तो और भी कई लाख रुपये की सम्पत्ति हजम की जा सकेगी इसके अतिरिक्त कुटुम्बियो मे धन का विभाग करके भी कई लाख की सम्पात्ति लाख के भीतर बताई जा सकेगी ।

समाधान—दुरुपयोग होने पर भी आखिर सीमा रहेगी । और इतना नियत्रण काफी है । वर्तमान के श्रीमानो का नियत्रण भी हो जायगा और कुछ बेकार-शालाओ के सचालन के लिये भी सरकार के हाथ मे जायगा । आज के बडे २ श्रीमानो को एकदम लूट लेना एक तरह का अन्याय है । उत्तराधिकारित्व के समय उनकी सम्पात्ति को इस तरह धीरे धीरे कम करने से उन्हे भी न खटकेगा और बेकारी हटाने के लिये भी धन मिल जायगा ।

भोगोपभोग के साधनो के रूप मे अगर कोई लाखो की सम्पत्ति रख भी ले तो भी जनता की विशेष हानि नही है । बल्कि वह सम्पत्ति भोगोपभोग के साधनो को खरीदने मे लगायगा इसलिये उन साधनो को तैयार करने वाले लोगो को काम मिलेगा इस प्रकार बेकारी दूर करने मे सहायता मिलेगी । भोगोपभोग के साधनो मे जीवन की आवश्यक सामग्री कोई अधिक नही रख सकता । अन्नका सग्रह तो अधिक करके कोई क्या करेगा क्योंकि अन्न बहुत अधिक तो खाया नही जा सकता । विक्रय करने के आशय से बहुत अधिक रक्खेगा तो वह सम्पत्ति मे गिन लिया जायगा । सजावट की चीजे या और भी ऐसी वस्तुओ का अधिक सग्रह करे तो इससे शिल्पकार आदि को काम मिलेगा । बेकारी यो ही दूर हो जायगी ।

कुटुम्बियो मे धन का विभाग कर भी लिया जाय तो भी अच्छा है । कम से कम इससे बहुत व्यक्तियो के पास तो सम्पत्ति पहुँचेगी । इस दृष्टि से सम्पात्ति का जितना विभाजन हो उतना ही अच्छा है ।

शंका-[२] सरकार को देने के लिये अधिक सम्पत्ति कोई अपने पास रक्खेगा क्यो ? वह दान कर देगा रिश्तेदारो और मित्रो मे वितरण कर देगा ।

समाधान—दान कर दे तो अच्छा है ही । इससे वह धन समाज मे फैलेगा ही । अगर रिश्तेदारो मे वितरण कर देगा तो भी सम्पत्ति का विभाजन होगा । और धीरे धीरे वह सम्पात्ति समाज मे फैल जायगी ।

शंका [३]—जो चीजे भोगोपभोग की सामग्री समझ कर सम्पत्ति नहीं ठहराई गई है अगर कदाचित् उन्हे बेचना पडे—जीवन निर्वाह के लिये ही उनका बेचना आवश्यक हो जाय तो वह क्या करे ?

समाधान- ऐसी परिस्थिति मे वह सरकार की अनुमति लेकर बेच सकेगा । पर इस हालत मे उसकी सम्पत्ति एक लाख रुपये से अधिक न होना चाहिये ।

शंका [४]—रुपया तो भारत का सिक्का है । भारत की आर्थिक दशा के अनुरूप यह मर्यादा उचित कही जा सकती है पर दूसरे देशो के लिये न तो यह मर्यादा ठीक हो सकती है और न वहा रुपये का चलन ही है ।

समाधान–रुपया तो एक उपलक्षण मात्र है। इसकि अनुरूप दूसरे देशो को अपने सिक्के मे सम्पत्ति की मर्यादा निश्चित कर लेना चाहिये। भारत मे भी परिस्थिति के अनुसार एक लाख रुपये से अधिक या कम मर्यादा स्थिर की जा सकेगी। खासकर अगर बेकारी की समस्या हल न हो तो एक लाख रुपये की मर्यादा घटाकर पचास हजार की जा सकती है। और उत्तराधिकारित्व के समय ही नहीं किन्तु जीवन मे ही अधिक सम्पत्ति का आधा या दो तृतीयांश बेकार शाला फंड मे लिया जा सकता है।

शंका [५] क्या श्रीमानो की तरफ से मिले हुए इसी धन से बेकार-शालाओ का काम चलाया जायगा ?

समाधान–यह मुख्य द्वार होगा। साथ ही बेकार शालाओ को चलाने के लिये सरकार दूसरी आमदनी मे से भी खर्च करेगी। बेकार शालाओ को चलाने की सरकार पर पूरी जिम्मेदारी रहेगी। श्रीमानो की सम्पत्ति मे से भाग नहीं मिला यह बहाना बेकारशालाओ के सञ्चालन मे बाधक न बनेगा।

शंका –[६]अगर पूँजीवाद मिट जाय और बेकार–शालाओ मे कोई आदमी न रहे तब भी क्या धन संग्रह पर रोक रहेगी ?

समाधान–अवश्य। बेकार–शालाओ को अगर उस धन की आवश्यकता न होगी तो सरकार उस धन को प्रजा-हित के दूसरे कामो मे खर्च करेगी।

ग–आय कर [इनकम टेक्स] निम्न लिखित दर के अनुसार देना पडेगा।

१- कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति पर पन्द्रह रुपया मासिक [बडे शहरो मे बीस रुपया] तक की आमदनी पर कर न लगेगा। सरकारी मकान का भाडा देना पडता होगा तो वह भी करसे मुक्त रहेगा। इससे अधिक आमदनी का चतुर्थांश करके रूपमे देना होगा।

जैसे किसी कुटुम्ब में पाच व्यक्ति है और १०) मासिक मकान भाडा देना पडता है और आमदनी १००) मासिक है तो १५×५=७५) +१०)=८५) इस ८५) मासिक पर कुछ टेक्स न रहेगा बाकी १५) रुपये मे से चतुर्थांश ३।।।) कर देना पडेगा। अगर छ आदमी कुटुम्ब मे हो जॉय तो कुछ भी न देना पडेगा। अगर चार रह जॉय तो ७।।) रु मासिक देना पडेगा। इस प्रकार कुटुम्ब मे आदमी बढने पर फी आदमी ३।।।) रु. कर घटेगा और आदमी घटने पर फी आदमी ३।।।) रु कर बढेगा।

घ–प्रत्येक आदमी को कुटुम्ब का मुखिया होते समय इस बात का विवरण देना होगा कि उसके पास इस समय कितनी सम्पत्ति है।

ङ–किसी भी मनुष्य से यह पूछा जा सकता है कि तुमको बालिग होते समय या उत्तराधिकारी होते समय इतनी सम्पत्ति मिली थी पर आज इतनी अधिक क्यो है ? सम्पत्ति के बढने का यदि सन्तोष-जनक कारण न मिलेगा तो वह अपराध समझा जायेगा। इससे जितनी सम्पत्ति के विषय मे सन्तोष-जनक उत्तर न मिलेगा उतनी सम्पत्ति छीनी जा सकेगी और कुछ जुर्माना भी किया जा सकेगा।

२ ब्याज हराम

क–कोई भी व्यक्ति ब्याज के ऊपर साहुकारी न कर सके, सुरक्षण के लिये सरकारी बैको मे वह रुपया जमाकर सके पर उसे ब्याज न मिले। आवश्यकता होने पर वह सरकार के मार्फत दूसरों

को रुपया दे सके पर उसका भी व्याज न मिल सके।

ख—करीब दस रुपये तक का देन लेन सरकार की मार्फत के बिना ही हो सकेगा। अधिक का भी हो सकेगा पर वह सरकार मे न माना जायगा। जैसे किसी के पास दो लाख की सम्पत्ति है। सरकार नियम न. २ [क] के अनुसार एक लाख की सम्पत्ति से अधिक का आधा भाग ले लेना चाहे और उसपर यह कहा जाय कि दो लाख मे एक लाख तो हमे अमुक आदमी का देना है तो सरकार इसे बहाना ही समझेगी। अगर वह एक लाख रुपया सरकार के मार्फत लिया होगा तो सरकार मान्य करेगी।

सरकार की मार्फत लेन देन से एक फायदा तो यह होगा कि लोग सम्पत्ति छिपाने के लिये ऐसा झूठा बहाना न बनायेगे। दूसरा लाभ यह होगा कि दीवानी झगडे प्राय: निःशेष हो जॉयगे। झूठे स्टाप झूठे गवाह आदि के झगडो से लोग बच जॉयगे।

इस समय बेक के द्वारा जैसा लेन देन होता है उसी तरह की व्यवस्था तब भी बना दी जायगी साथ ही यह शर्त भी रहेगी कि देने वाले और लेने वाले बेक पर हाजिर रहे। कुछ अपवादो की बात दूसरी है।

शंका (६) इस प्रकार अगर व्याज लेना बिलकुल बन्द होजायगा तब कोई किसी को रुपया उधार क्यो देगा? सभी लोग अपना रुपया बेक मे या घर मे रक्खेगे। पर जीवन मे उधार लेने की आवश्यकता तो सभी को होती है उनकी असुविधा बढ जायगी। और उधार के बिना कभी कभी भूखो मरने की नौबत आ जायगी।

समाधान—आज उधार लेने की जितनी जरूरत पडती है उतनी उस समय न पडेगी। भूखो मरने की नौबत तो इसलिये न आयगी कि बेकार शालाओ के द्वारा खाना मिल जायगा। विवाह आदि विशेष अवसरो पर उधार लेने की जरूरत पडती है पर यह मूर्खता बन्द होना चाहिये। उधार लेकर उत्सव मनाना ऐसा अपराध है जो कानून की मारसे भले ही बच जाता हो पर उत्तरदायित्व और विवेकी दृष्टि से जो अत्यन्त निन्दनीय है। विवाह के खर्च के लिये अगर तुम्हारे पास कुछ भी नही है तो पाच पडोसियो के सामने दोनो का विवाह घोषित कर दो सरकार मे इस की सूचना दे दो। बस, खर्च करने की कोई जरूरत नहीं है। उधार न मिलने से बहुत से मूर्खतापूर्ण अनावश्यक खर्च आप ही बन्द हो जॉयगे। लोगो को यह बडा लाभ होगा।

ग—यह हो सकता है कि किसी को व्यापार के लिये पूजी की आवश्यकता हो और पूजी देने के लिये कोई भी पडौसी या परिचित अपरिचित बन्धु उधार न देता हो तो ऐसी हालत मे सरकारी बेक से रुपया उधार मिल सकेगा। इसके लिये उसे अपनी आवश्यकता योग्यता और कार्य प्रणाली बताना पडेगी। ऋण चुकाना अनिवार्य होगा। नहीं तो दफा नं. ४ के अनुसार उसे दडित होना पडेगा। साधारणत: यह ऋण १०००) रुपये से अधिक न होगा।

घ—जो आदमी इस प्रकार सरकारी बेक से रुपया उधार लेगा उसे सौ रुपये पर महीने मे दो आने व्याज देना होगा। इस प्रकार सिर्फ सरकारी बेक ही व्याज ले सकेगे सो भी इतनी मात्रा मे। और किसी को व्याज लेने का अधिकार न होगा। न खानगी बेक खुल सकेगे। सरकारी बेकोको जो व्याज से आमदनी होगी वह बेक के सचालन मे खर्च होगी। फिर भी अगर कुछ बचत रही तो बेकार शालाओ के पोषण मे

जायगी। इस प्रकार इस ब्याज से जनता का ही भला होगा। इसलिये यह हराम न समझा जायगा।

ड—वृद्ध आदमियो को कुछ शर्तोपर विशेष ब्याज मिल सकेगा। जिससे वे सन्तोष से जीवन बिता सके। शर्ते ये रहेगी।

[१] मूल धन सदाके लिये सरकार मे जप्त हो जायगा।

[२] ४५ वर्ष के वृद्ध को प्रतिमास आठ आना सैकडा, ५० वर्ष के वृद्ध को नव आना सैकडा ५५ वर्ष के वृद्ध को दस आने सैकडा, ६० वर्ष के वृद्ध को ग्यारह आना सैकडा और ६५ वर्ष के वृद्ध को बारह आना सैकडा, ७० या इससे अधिक उम्रके वृद्ध को चौदह आना सैकडा उसके जीवन के अन्त तक मिलता रहेगा। उसके मरने के बाद उसकी मौजूदा [रुपये जमा कराते समय की] सन्तान को तब तक यह रकम मिलती रहेगी जब तक सन्तान नाबालिग और अविवाहित है। विवाहित होने पर या बालिग होने पर [१८ वर्ष का होने पर] उस का हिस्सा मिलना बन्द हो जायगा।

जैसे किसीने ४५ वर्ष की उम्र मे ४००० रु जमा किये। २०) महीना ब्याज मिलने लगा। दस वर्ष बाद वह मर गया। उसके चार सन्तान है। १२ वर्ष का पहिला लडका, १० वर्ष की लडकी, ८ वर्ष का दूसरा लडका, ४ वर्ष की लडकी। तो उन मासिक वीस रुपये के चार हिस्से किये जॉयगे और चारो को पाच पाच रुपया महीना दिया जायगा। बडे लडके को छ वर्ष बाद जब कि वह १८ वर्ष का हो जायगा उस का हिस्सा ५) महीना मिलना बद होगा। लडकी अगर १८ वर्षकी उम्र तक कुमारी रही तो उसे तबतक ५) महीना मिलेगा। अगर १५ वर्षकी उम्र मे शादी हो गई तो उसका महीना उसी समय बद हो जायगा। इसी प्रकार दूसरा लड़का और दूसरी लडकी भी बालिग होने तक ब्याज पाती जायगी। मूलधन सदाके लिये सरकारी हो जायगा।

३—यह ब्याज किसी भी हालत मे बद न होगा। किसी अपराध मे जुर्माना होने पर भी उसकी इच्छा के विरुद्ध इस ब्याज मे से जुर्माना वसूल न किया जायगा। अगर वह जेल जाय तो उसकी पत्नी या सन्तान को वह ब्याज मिलता रहेगा। अगर पत्नी या सन्तान न होगी तो और किसी सम्बन्धी को न मिलेगा उसीके नाम से जमा होता रहेगा और जेल से निकलने पर उसे मिल जायगा।

४—इस प्रकार के पेन्शन-ब्याज लेने वाले वृद्ध को चाहिये कि वह किसी का ऋण अपने ऊपर न रक्खे। अगर ऋण निकलेगा तो उसका पेन्शन ब्याज ऋण चुकाने मे लगा दिया जायगा। अगर पेन्शन-ब्याज से शीघ्र न चुकेगा तो आज तक दिये गये पेन्शन-ब्याज को काटने पर जितना मूलधन बचेगा उसमे से वह ऋण चुका दिया जायगा। और ऋण छिपाने के अपराध मे मूलधन का एक चतुर्थांश तक और कम कर लिया जायगा। बाकी मूलधन समझा जायगा। जैसे किसी ने २०००) जमा किया। पाच साल मे उसने ६००) रुपये ब्याज मे ले लिये। बाद मे किसी का ४००) ऋण निकल आया। तो २०००) मे से ब्याज के ६००) निकालने पर जो १४००) बचे उसमे से ४००) का ऋण चुकाया जायगा। फिर जो १०००) बचे उस मे से २५०) ऋण छिपाने का दड समझ कर ७५०) मूलधन के रूप मे बेंकमे जमा रहेगे।

और सिर्फ ७५० का व्याज ही उसे मिलेगा ।

[५] अगर पति पत्नी मे से कोई भी पैतालीस वर्ष से कम उम्रका न हो तो दोनो के नाम से वेक मे रुपया जमा होगा । दोनो मे से जो अन्त तक जीवित बचेगा उसी को वह पेन्शन-व्याज मिलता रहेगा । पर दोनो मे से जिसकी उम्र कम होगी उसी के अनुसार व्याज की दर निश्चित की जायगी । अगर पति पचास वर्पका है और पत्नी पैतालीस की तो व्याज की दर ४५ वर्प के अनुसार आठ आना रहेगी । पचास के अनुसार नव आना नही ।

दोनो के मरने के बाद वह व्याज नाबालिग सन्तान को मिलेगा ।

दोनो मे से कोई एक मर जाय और दूसरा शादी करले तो उसको व्याज मिलना बन्द हो जायगा । वह पहिले दम्पति की नाबालिग सन्तान को मिलने लगेगा । सन्तान न होगी तो किसी को न मिलेगा ।

४ ऋण चुकाना अनिवार्य

क--जो ऋण लिया है वह ईमानदारी से पाई पाई चुकाना मनुष्य मात्र का नैतिक कर्तव्य है । ऋण न चुकाना एक प्रकार की चोरी है और ऋण अस्वीकार करना तो डकैती है । इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको ऋण चुकाना अनिवार्य होगा ।

यह कहना कि ऋण देनेवाले के पास आवश्यकता से अधिक धन होगा इसीलिये उसने ऋण दिया । वह अधिक धन अगर किसी ने खा लिया तो क्या अन्याय है, ठीक नही । आवश्यकता से अधिक धन तो बहुतो के पास होगा परन्तु जिसने तुम्हारी ही इच्छा के अनुसार तुम्हारे लिये मौके पर सहयोग दिया उसे ही तुम धोखा दो विश्वासघात करके हजम कर जाओ और जिसने तुमको विश्वासपात्र नही समझा या तुम्हारी आवश्यकता का मूल्य नही समझा वह सुरक्षित रहे यह तुम्हारे जीवन का बडा भारी पाप है । अगर सम्पत्ति का विभाजन ही करना है तो नीति और कानून के बलपर करो इस तरह विश्वासघात करके नही । निरतिवाद मे किसी का ऋण माफ नही किया जायगा । हा, ऋण मे जितना भाग अयोग्य होगा या सारा ऋण ही अयोग्य होगा तो उतना ऋण नाजायज ठहरा दिया जायगा पर माफ नही किया जायगा ।

ख--कोई आदमी अपने को दिवालिया घोषित नही कर सकेगा । उसे जीवन भर ऋण चुकाने का यत्न करना पडेगा ।

दिवालिया की प्रथा पूँजीवाद और पूँजीपति बढाने मे सहायक होती है । एक पूँजीवादी व्यक्ति पूँजीपति बनने के लिये चतुराई के नाम पर बदमाशी करके इधर उधर से लाकर सम्पत्ति इकट्ठी करता है । कुछ दिनो बाद दिवाला निकाल देता है । कुछ सम्पत्ति पत्नी के नाम कुछ नाबालिग बच्चे के नाम कर देता है । कुछ किसी अन्य ढग से छिपा जाता है । कुछ दिनो बाद दूसरे नाम से दूकान चलाता है फिर इसी तरह की गडबडी करता है । इस प्रकार एक दो बार दिवाला निकाल कर अच्छा श्रीमन्त बन बैठता है । बहुत से पूजीपति तो इसी प्रकार बन गये है । ऐसे लोग अपने साथी पूँजीपतियो का ही नही, किन्तु गरीबो का भी धन हडप जते है । कोई गरीब दो दो चार चार रुपये जोडकर सेठजी के यहा जमा कर देता है । सेठजी का कल दिवाला निकलनेवाला है और राततक मोटरे खरीदी जा रही है । इस प्रकार धोखा देकर कुछ लोग पूँजीपति बन बैठते

है। इसलिये दिवालिया किसीको न बनाया जाय।

ग—जो आदमी अपने को ऋण चुकाने मे असमर्थ घोषित करे उसके कुटुम्ब की सब संपत्ति सरकार जप्त करले। फिर वह स्त्री के नाम हो या पुत्र के नाम हो।

घ—अगर यह मालूम हो कि ऋणी ने कुछ सम्पत्ति इसलिये सम्बन्धी या मित्रो के नाम कर दी है कि जिससे बेक या साहुकार उसे ऋण मे ले न सके तो वह सम्पत्ति सरकार जप्त तो कर ही लेगी। साथ ही दोनो के लिये यह दंड-नीय अपराध समझा जायगा।

ङ—ऐसे व्यक्ति को अपना मकान जमीन आभूषण आदि ऋण चुकाने मे लगा देना होगा। और तबतक उसे ऋणशाला मे रहना होगा जबतक वह ऋण न चुक जाये। हा, पत्नी पुत्र आदि के लिये ऋणशाला मे जाना अनिवार्य न होगा। अगर ऋण न चुक पाये तो उसे जीवन भर ऋणशाला मे रहना होगा।

च—ऋणशाला बेकार शाला की तरह एक ऐसी शाला होगी जहा ऋण चुकाने मे असमर्थ लोगो को आकर रहना पडेगा। बेकारशाला की तरह उन्हे साधारण खाना मिलेगा और साधारण मजदूरी करना पडेगी। अगर उनकी योग्यता अधिक कमाने की होगी तो इस प्रकार की नौकरी करनेकी सरकार इजाजत दे देगी। अथवा जमानत मिलने पर उन्हे व्यापार की सुविधा भी दी जा सकेगी। उनकी आमदनी मे से उनके भरण पोषण का खर्च निकाल कर बाकी ऋण चुकाने मे लगाया जायगा। ऋण मुक्त होने पर उन्हे ऋणशाला से मुक्त कर दिया जायगा।

छ—निरतिवादके प्रचारके पहिलेका अगर ऋण होगा तो उसके चुकाने के लिये कुछ सहूलियत दी जायगी। उसमे आगे के लिये व्याज तो माफ कर ही दिया जायगा साथ ही कुछ सम-झौते के ढग से काम लिया जायगा।

ज—समय की अधिकता से ऋण नाजायज न हो सकेगा। समय कितना भी चला जाय ऋण बना ही रहेगा।

झ—जो आदमी ऋणी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होगा उसे वह ऋण भी लेना पडेगा। नही तो वह सम्पत्ति उसे न मिलेगी।

५ कारखाने आदि

क—कपडे की मिले, कोयले की खदाने, रेलवे, घासलेट, पेट्रोल आदि, मोटर, साइकिल इत्यादि के कारखाने सरकारी हो और सरकारी प्रबन्ध मे काम करते हो।

ख—छोटे छोटे खानगी कारखाने रहे पर उन मे कोई शेयर न ले सके। शेयर की प्रथा ही बन्द रहे।

ग—बीमा कम्पनियॉ और बेक राष्ट्रीय सर-कार या प्रान्तीय सरकार के हो। व्यक्ति के या हिस्सेदारो [शेयर–होल्डरो] के बेक और बीमा कम्पनियॉ न हो। क्योकि पूजी बढाने की मनाई है अगर बीमा का रुपया व्यापार मे लगाया जायगा तो व्यापार मे घाटा आने पर बीमावालो का रुपया मारा जायगा।

घ—अनेक व्यक्ति मिलकर एक दूकान खोल सकते है—अथवा हलका पतला कारखाना भी निकाल सकते है। पर प्रत्येक हिस्सेदार को वहा काम करना होगा। सिर्फ पूजी लगाकर कोई हिस्सेदार न बन सकेगा न व्याज के नाम पर कुछ ले सकेगा। जो आदमी उसमे काम न करता होगा और व्याज के लिये पूजी लगायगा

तो उसकी पूंजी सरकार मे जप्त हो जायगी। व्याज या नफा लेने पर अपराधी समझा जायगा इससे सजा पायगा।

ङ--म्युन्युसपल कमेटियॉ या डिस्ट्रिक्ट बोर्डो को ट्राम रेलवे, वस आदि खोलने का अधिकार होगा।

च--जहा तक हो सके बडे बडे कारखाने न खोले जॉय। कारखानो का रूप ऐसा हो जिन्हे एक कुटुम्ब आराम से चला सके। कपडे की एक मीलकी अपेक्षा अगर छोटे छोटे कर्घे घर घर मे हो या इस प्रकार की मशीने हो जो घर पर चलाई जा सकती हो और मनुष्य इच्छानुसार उस पर काम करे और काम के अनुसार पैसा पावे तो और अच्छा। घर द्वार छोडकर हजारो आदमियो का एक जगह काम करने से काम चाहे कुछ सस्ता या सुविधा जनक होता हो पर दूसरी दृष्टि से बडी हानि होती है। १--बीच बीच मे विश्राम करता हुआ स्वतन्त्रता से काम करने वाला मनुष्य दस घटेसे भी अधिक काम आराम से कर सकता है। मील मे आठ घटा भी भारी मालूम होता है। २--मील मे स्वास्थ्य खराव हो जाता है। ३--सदाचार नष्ट हो जाता है। ४ पराधीनता बढ जाती है।

इत्यादि बहुत से दोप बडे बडे कारखानो मे है। जिन कार्योंके लिये बडे कारखाने बनाना अनिवार्य है उनकी बात दूसरी है। वे रहे, पर जो चीजे ऐसे बडे कारखानो के बिना भी तैयार की जा सकती है उनके विपय मे नीति विभक्तीकरण की रहे।

६ ज़मीन और मकान

क--जमीन की मालिकी जहा तक हो सके समानरूप मे रक्खी जाय। आवश्यकता से अधिक जमीन कोई न रक्खे। जमीदारी प्रथा नष्ट कर दी जाय। जमीन को भाडे पर देना आदि सख्त मना रहे।

ख--एक कुटुम्ब को उतनी ही जमीन मिले जितने मे वह अपने हाथ से खेती कर सके। अनाज काटने या देखरेख मे वह नौकरो या मजदूरो से सहायता ले सके पर खेती के कार्य मे वह स्वय सहयोगी रहे।

ग--कुटम्ब के एक एक व्यक्ति के पीछे कुछ जमीन नियत रहे [उदाहरणार्थ पाच पाच एकड] जिससे अधिक जमीन कोई न रख सके। अगर कुटुम्बियो की सख्या घट जाय और उससे जमीन रखने की सीमा का उल्लघन होता हो तो सरकार वह जमीन दूसरो को-जिनके पास सब से कम जमीन हो-भाडे से देदे।

घ--सरकार जो जमीन किसी को भाडे पर देगी वह जमीन आवश्यकतानुसार कभी भी ले सकेगी। सरकारी आवश्यकता के दो रूप रहेगे। १ कोई सरकारी काम हो। २--किसी कम जमीन वाले को या वेजमीन को ज़मीन देना हो।

जो जमीन सरकार वेच देगी उसका लगान तो देना पडेगा पर वह मौरूसी होगी। मकान मालिक उसे वेच तो सकेगा, पर तबतक सरकार वह जमीन ले न सकेगी जबतक उसके कुटुम्ब मे उतनी जमीन के खेती करने वाले रहे। सरकार जब लेगी तब उसका मूल्य चुका देगी। पर बारह वर्प तक मूल मालिक को आवश्यकता सिद्ध करने पर सरकार से अपनी जमीन वापिस लेनेका हक होगा।

ङ--बस्ती या म्युन्युसपल के भीतर कोई कुटुम्ब एक एकड से अधिक जमीन न रख सकेगा

च--अपने उपयोग के लिये ही मकान रख सकेगा भाडे पर देने के लिये नहीं।

छ--भाडे पर देने के लिये मकान और दूकान सरकारी या म्युन्युसिपल आदि की होगी। छोटे गाव मे भी गाव की ओर से या सरकार की ओर से ऐसे मकान बनेगे जो भाडे पर दिये जा सकेगे।

प्रश्न--इससे प्रवासियो का कष्ट बढ जायगा। अगर किसी गाव मे सरकारी मकान न हो, अथवा होकर के भी भरा हुआ हो तो प्रवासी कहा ठहरे? गाववाले भाडे के लोभ के बिना मकान क्यो देगे?

उत्तर--मकान जब व्यापार के साधन न रह जॉयँगे तब लोगो की भावना ही बदल जायगी। आज भाडे के कारण मकानो का मूल्य दूसरे ढग का ही मालूम होता है। पर उस समय मकान आवश्यक होने पर भी पानी की तरह पीने और पिलाने की चीज रह जॉयँगे। आतिथ्य की भावना बढ जायगी। यो तो आज भी प्रवासियो को थोडा बहुत कष्ट सहना ही पडता है सो तब भी सहना पडेगा। छोटे गावो मे तो आज भी मकान भाडे को लोग बहुत कम जानते है।

२ **प्रश्न**--होटलो का क्या होगा?

उत्तर--होटल तब भी रहेगे। पर इसके लिये सरकारी मकान भाडे से मिलेगे। हा सिर्फ भोजन कराने के लिये अपने मकान का उपयोग किया जा सकता है। पर यात्री को ठहराने और ठहरने का भाडा लेना हो तो सरकारी मकानो मे ही हो सकेगा। यदि ऐसा न किया जायगा तो लोग इसी बहाने पूँजी से व्याज या नफा पैदा करने की कोशिश करेगे।

३ **प्रश्न**--भाडे के लिये सरकारी मकान रहने से एक बडी दिक्कत बढ जायगी। वह है पडौस की। सरकारी मकानो मे जाति-पॉति का विचार तो रक्खा नहीं जा सकता। तब पडोस मे एक मास-भक्षी भी आकर रह सकेगा। इससे शाक-भोजियो को बडा कष्ट होगा।

उत्तर--सरकारी मकानो मे जातिपॉतिका विचार तो न रहेगा पर मासभोजियो के लिये खास खास इमारते ही रहेगीं। शाक भोजियो के मकान मे मांसभोजी न रह सकेगा।

४ **प्रश्न**--जमीन और मकान जिस प्रकार भाडे से न दिये जॉयँगे उसी प्रकार क्या अन्य चीजो के भाडे पर देने की मनाई होगी? उदाहरणार्थ-मोटर-गाडी, साइकिल आदि भी भाडे से न दी जासकेगी?

उत्तर--साइकिल मोटर आदि को भाडे पर देने की मनाई न होगी। जमीन और मकान जीवन की अनिवार्य आवश्यकताऍ है इनके ऊपर मनुष्य का एकाधिपत्य हो जाना दूसरो को जन्म सिद्ध अधिकार से वञ्चित करना है। साइकिल मोटर आदि मे नही।

प्रश्न--फिर भी पूँजी पैसा कमाने मे सहायक तो हुई।

उत्तर--सो तो होगी ही। पर उसके साथ परिश्रम आदि भी लगेगा। व्याज की तरह केवल पूँजी पूँजी न बढाये यही आवश्यक है। परिश्रम का साधन बने तो कोई हानि नही अथवा अनिवार्य हानि है।

७ सरकारी मुलाज़िम

क--सरकारी काम पर नियुक्त होते समय प्रत्येक व्यक्ति को अपनी साम्पत्तिक अवस्था बता देनी होगी। इसी प्रकार छोडते समय बतानी होगी।

ख--रिश्वत लेने की सख्त मनाई रहेगी। साधारणतः रिश्वत देनें वाला और रिश्वत लेनेवाला दोनो ही अपराधी समझे जावेगे। पर रिश्वत लेने वाला तो निश्चित ही अपराधी रहेगा। हा, रिश्वत

देने वाला उस हालत मे ही अपराधी समझा जावेगा जब रिश्वत देकर कोई अनुचित लाभ चाहेगा। भुलाकर डराकर या उसकी स्वाभाविक सुविधा से वंचित कर अगर रिश्वत ली गई होगी तो रिश्वत देनेवाला अपराधी न माना जावेगा।

ग—वेतन निम्न लिखित मासिक दरके अनुसार रहेगा।

राष्ट्राध्यक्ष १०००)
प्रान्ताध्यक्ष ५००) से ७००) तक
राष्ट्रीय धारासभा के मत्री आदि ५००) से ६००)
प्रान्तीय धारासभा के मत्री आदि ४५०) से ५००)
हाइकोर्ट जज ४५०) से ६००) तक
कलेक्टर शेसन जज आदि २५०) से ३५०) तक
प्रोफेसर सबजज आदि १००) से २००) ,,
तहसीलदार आदि ७५) से १००) तक
नायब तहसीलदार ५०) से ७५) ,,
पुलिस इन्सेपक्टर ४०) से ६५) ,,
हॉइस्कूल के मास्टर ४०) से १००)
मिडिल स्कूल के मास्टर २५) से ३५) तक
प्रायमरी स्कूल १६) से ३०) तक

यह एक साधारण रूप रेखा है। इमसे दृष्टि-कोण मालूम होता है।

घ—सरकारी मुलाजिमो को वेतन के अतिरिक्त निम्न लिखित सुविधाएँ और मिलेगी।

राष्ट्राध्यक्ष-मकान, मकान की सफाई आदि को नौकर, बोडीगार्ड, मोटर आदि सवारी, उसके लिये नौकर तथा पेट्रोल आदि।

प्रान्ताध्यक्ष आदि को कुछ कम मात्रा मे। इसी के अनुसार मत्री आदि का भी विचार किया जायगा।

सबजज आदि को रहने के लिये मकान मुफ्त दिया जायगा।

ङ--पेन्शन मिलेगी।

८ नारीका अधिकार

क--प्रत्येक विवाह के समय स्त्री-धन नियत किया जायगा। उस पर हर हालत मे जीवन भर नारी का अधिकार रहेगा।

ख--उत्तराधिकारित्व मे पुत्रो के समान पत्नी का भी एक भाग रहेगा।

ग--माता के स्त्रीधन पर उसकी पुत्रियो का अधिकार होगा। पुत्री न हो या जीवित न हो तो वह पुत्रों को मिलेगा। पुत्री के पति पुत्र आदि को नहीं। माता अगर अपना स्त्रीधन पुत्रियो को न देना चाहे तो नही भी दे सकती है। माता की इच्छा मुख्य है।

घ--नारी अगर विशेष अर्थोपार्जन करती हो तो १५) मासिक आमदनी के अतिरिक्त जितनी आमदनी होगी उस पर उसी का अधिकार होगा। १५) कुटुम्ब खर्च के लिये कम किये गये है।

ङ--पति के अगर कोई सन्तान न हो तो पति की समस्त सम्पत्ति पर पत्नी का अधिकार होगा। पति के कुटुम्बियो का नहीं।

निरतिवाद का यह साकेतिक रूप है। कुछ बाते तो मैंने यहा कुछ स्पष्टता से लिखीं है जिससे निरतिवाद की व्यावहारिकता को लोग समझ सके और कुछ साधारण रूप मे ही लिखदी है। समय आने पर इनके उपनियम बनाने मे देर न लगेगी।

कुछ बाते ऐसी है जिनको मैंने यहा लिखा नही है पर वे आपसे आप समझी जा सकतीं है। जैसे निरतिवादी समाज मे सट्टा जूआ आदि बन्द रहेगा, भिक्षा मॉगना अपराध समझा जायगा। अमुक योग्य साधुओं को ही आवश्यकतावश इसकी पर्वानगी दी जा सकेगी। लोग सग्रहशील

बनने की अपेक्षा दानशील बने इसके लिये दानियो को विशेष उपाधियो का देना आदि बहुत सी छोटी बडी बाते है जो देशकाल देखकर प्रचलित की जॉयॅगी। यहा तो निरतिवाद को समझने के लिये सक्षिप्त रूप-रेखा रखदी है। परिस्थिति के अनुसार इसमे परिवर्तन भी हो सकता है।

अब और यहां

निरतिवाद का जो रूप यहा बताया गया है वह कोरा आदर्श नही है वह एक व्यावहारिक योजना है। पर उस व्यावहारिक योजना को भी अमल मे लाने के लिये समय चाहिये। प्रत्येक देश की परिस्थिति ऐसी नही होती कि जो एक-दम निरतिवाद के रूप मे बदल जाय। यद्यपि निरतिवाद के प्रचार के लिये पूरी नही तो आशिक क्रान्ति की आवश्यकता है फिर भी निरतिवाद इस ढग से काम करना चाहता है कि लोगो को कम से कम झटका लगे।

मै भारत की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए कुछ ऐसा कार्य निश्चित करना चाहता हू जो कुछ शीघ्र व्यवहार मे लाया जा सके। दूर भविष्य मे पूरा निरतिवाद प्रयोग मे आ ही जायगा किन्तु उसके बीच का विश्राम-स्थान कैसा हो इसी का यहा वर्णन करना है।

निरतिवाद की योजना मे बहुत सी बाते तो ऐसी है जिन पर आज भी पूरा अमल करना है। परन्तु कुछ बाते ऐसी है जिन पर समझौते की दृष्टि से कुछ परिवर्तन करना है।

(१) बेकार-शाला

इस विषय की सभी बाते आज भी व्यवहार मे आने लायक है।

(२) धनसंग्रह पर रोक

इस विषय की भी सभी बाते आज व्यवहार में आने योग्य है।

(३) व्याज हराम

क—मूल योजना तक पहुँचने के लिये पंद्रह वर्ष का समय निश्चित किया जाय। पहिले पाच वर्ष तक बेकोसे प्रति वर्ष २) सैकडा। इस के आगे पाच वर्ष तक १॥) सैकडा। इसके आगे पाच वर्ष ॥।) सैकड़ा व्याज मिले बादमे व्याज देना बिलकुल बद हो जाय।

ख, ग,—मूल योजना की तरह अब और यहा भी व्यवहार मे लाये जा सकते है।

घ—इसमे व्याज की दर मे परिवर्तन करना होगा। जब बेक पन्द्रह वर्ष के तीन भागो मे २) १॥) ॥।) व्याज देगे तब उन्हे लोगो से कुछ अधिक लेना होगा। इसलिये पहले पाच वर्ष मे ३) सैकडा प्रतिवर्ष, दूसरे पाच वर्ष मे २॥) सैकडा तीसरे पाच वर्ष मे २) सैकडा।

खानगी बेको को भी व्याज की इसी दर का पालन करना चाहिये। और पाच वर्ष मे बेक तोड देना चाहिये। बेक की पूँजी शेयर-होल्डरो मे बॉट देना चाहिये।

ङ—मूल योजना की तरह।

(४) ऋण चुकाना अनिवार्य

इसके **क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ,** विषय तो मूल योजना की तरह अब और यहा भी रहेगे। **छ** के विषय मे कुछ स्पष्टीकरण यह है--

पुराना जो ऋण है उस पर तब से अबतक मासिक चार आना सैकडा व्याज लगाया जाय और बीचमे अवधि समाप्त होने के डरसे नालिश

वगैरह की हो तो उसका खर्च भी जोडकर ऋण की जो रकम हो उसमे वह सब रकम कम कर दी जाय जो साहूकार को आज तक मूल या ब्याज के नाम पर मिली है। इस ऋण को चुकाने के लिये पाच वर्ष की मुद्दत दी जाय। इस मुद्दत मे ब्याज न लगाया जाय। अगर ऋणी की आर्थिक स्थिति अच्छी हो तो जल्दी ऋण चुकाने के लिये न्यायालय आज्ञा दे।

(५) कारखाने आदि

इसके सभी विषयोमे पुराने कारबार के लिये निम्न लिखित स्पष्टीकरण है--

१--अभी जो कारखाने या कम्पनियाँ है वे पाच वर्ष मे सरकारी हो जॉयगी। उनकी मशीन आदि की जो उस समय कीमत उचित समझी जायगी वह सरकार देगी। पर सरकार एक साथ न देगी। वह दस वर्ष मे धीरे धीरे देगी। और उसी क्रम से वह शेयर होल्डरो मे बट जायगी।

२--एक व्यक्ति के नाम अगर एक लाख रुपये से अधिक के शेयर होगे तो वे अधिक शेयर सरकार जप्त कर लेगी। अर्थात् हिस्सा होते समय उन शेयरो का रुपया सरकार खुद लेलेगी।

३--बीमा कम्पनियाँ नये बीमा लेना बद कर देगी। पाच साल तक पुराने बीमो का रुपया लेती रहेगी और चुकाती रहेगी पर शेयर होल्डरो को प्रति वर्ष ३) सैकडा से अधिक न बॉट सकेगी। बाद मे कम्पनी सरकारी हो जायगी। और वह ऊपर के दो नियमो के अनुसार शेयर-होल्डरो को बदला देगी।

४--पाच वर्ष मे सब हिस्सेदारो को अपना हिसाब करके अलग हो जाना चाहिये। अथवा वे नियम न. ५ घ के अनुसार नये ढगसे हिस्सेदारी कर सकते है।

६ ज़मीन और मकान

क--वर्तमान मे जो जमीदार है उनका जमीदारी हक दस वर्ष तक चालू रहे। बादमे उनकी जमीदारी सरकार लेले। इसके बाद पाच वर्ष उनको अपनी जमीन कम करने के लिये और दिये जॉय। इस बीच वे अपनी जमीन बेच सकते है या कुटुम्ब मे इस प्रकार विभक्त कर सकते है कि नियम न. [६--**ग**] के साथ विरोध न रहे।

ख--जिनके पास जमीन अधिक है उन्हे दस वर्ष का समय दिया जाय कि वे अपनी जमीन नियम न. ६-ग के अनुसार करले।

ग--ऊपर जो क और ख मे समय दिया गया है उसके पूर्ण होने पर यह योजना काम मे लाई जाय।

घ--मूल योजना की तरह।

ङ--पाच वर्ष की अवधि दी जाय।

च--पाच वर्ष तक मकान भाडा ले सकेगा। परन्तु भाडा औचित्य की मात्रा से अधिक तो नही है इसकी जॉच की जायगी। और दो वर्ष के बाद भाडेका चतुर्थांश सरकार लेने लगेगी। उसके दो वर्ष बाद आधा लेने लगेगी और पाचवे वर्ष तीन चतुर्थांश। बाद मे पूरा। सिर्फ मरम्मत के लिये भाडे की आमदनी का एक दशांश मिल सकेगा।

छ--मूल योजना की तरह।

७ सरकारी मुलाज़िम

क और **ख** मूल योजना की तरह।

ग मे थोडा बहुत परिवर्तन किया जा सकता है।

घ ङ मूलकी तरह।

८ नारीका अधिकार

सभी विषय मूल योजना की तरह ।

९ देशी राज्य

यह एक नया विषय है जो मूल योजना मे नही है । वास्तव मे इनकी आवश्यकता नहीं है परन्तु भारतवर्ष मे ये है और इस परिस्थिति मे है कि इन्हे सहसा तोडा नहीं जा सकता । ऐसी हालत मे अगर इनके विषय मे निश्चित और दृढ विचार प्रगट न किये जॉयॅ तो ये शकाकुल रहेगे और कभी भी प्रजा के सहयोगी न बनेगे । देशी राज्यो को ईमानदारी के साथ दृढ आश्वासन देने की जरूरत है और इनका स्थान निर्दिष्ट कर देना भी ज़रूरी है ।

क-राजाओ का सन्मान वही रहेगा जो आज है ।

ख--राजाओ को राज्यो मे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करना होगा । राजाओ का स्थान सुरक्षित है । पर जैसे इग्लेड के राजा के अधिकार सीमित है असली और अतिम अधिकार पार्लमेट को है उसी प्रकार राजाओ के अधिकार सीमित रहेगे असली अधिकार उस राज्य की व्यवस्थापक सभाको और अतिम अधिकार भारत सरकार को रहेगे ।

ग--देशी राज्यो के अलग सिक्के पोष्ट और फौजदारी कानून न होगे । भारत सरकार के सिक्के पोष्ट और फौजदारी कानून ही लागू होगे । दीवानी कानून भी भारत सरकार से पास करा लेना पड़ेगे ।

घ--वर्तमान मे उनके रहने के लिये जो महल है वे उन्हीं के पास रहेगे । हा, जो उनके किसी काम मे नहीं आते वे राज्य के काम मे लेलिये जावेगे । राज महलो की देखरेख सफाई आदि के लिये नौकर तथा सामान राज्य की तरफ से मिलेगा ।

ङ--बोडीगार्ड, मोटर आदि का खर्च भी राज्य की तरफ से मिलेगा ।

च--विदेश-यात्रा या अन्य किसी यात्रा का खर्च भी राज्य से मिलेगा पर इसकी स्वीकृति धारासभा से लेनी होगी और बजट भी धारासभा से पास कराना होगा ।

छ--विवाह शादी आदि विशेष प्रसगो के लिये भी राज्य की तरफ से खर्च मिलेगा पर उसकी स्वीकृति धारा सभा से लेनी होगी ।

ज- भोजन खर्च, वस्त्र खर्च, खानगी यात्राएँ, दान पुण्य, तथा और भी पाकिट खर्च के लिये राजाओ को निम्न लिखित भेट राज्य की ओर से मिलेगी ।

राजा के लिये १०००) मासिक
रानी के लिये ५००) मासिक
राजकुमार और राजकुमारियो को २५०) मासिक
राजा के सगे भाई
अविवाहित बहिन और } २५०)
राजमाता प्रत्येक को

झ---राजा, रानी, राजा के भाई, बालिग राजकुमार इनको राज्य की तरफ से कुछ न कुछ काम सौंपा जायगा । वह इन्हे करना होगा । उपर्युक्त भेट पेन्शन के तौर पर न होगी किन्तु एक तरह का वह वेतन या आनरेरियम होगा ।

ञ---आज जो राजाओ के पास खानगी जायदाद है उसमे से दस लाख रुपये तक की जायदाद उनके पास रहेगी बाकी राज्य की समझी जायगी ।

ट---देशी राज्यो की तीन श्रेणियॉ रहेगीं । प्रथम श्रेणी मे हैदराबाद मैसूर गवालियर बडौदा काश्मीर इन्दोर उदयपुर जयपुर आदि रियासते रहेगी । राजकुटुम्बो के लिये ऊपर जिस भेटका वर्णन किया गया है वह प्रथम श्रेणी की रियासतो

के विषय मे है। इन रियासतो का स्थान एक प्रान्तीय सरकार सरीखा होगा अर्थात् ये भारत सरकार के नीचे रहेगी।

दूसरी श्रेणी की रियासतो मे राजकुटुम्बो के लिये जो भेट दी जायगी वह ऊपर के अनुपात से करीब आधी होगी उनके अन्य खर्च भी कम होगे। ये रियासते प्रान्तीय सरकारो के अधीन रहेगी इन का स्थान एक जिला की तरह होगा।

तीसरी श्रेणी की रियासते जिलाधीश (कलेक्टर) की देखरेख मे रहेगीं। इनके शासको को आनरेरियम और भी कम मिलेगा।

ठ—किसी भी राजाको गोद लेने का अधिकार न होगा। उसके बाद राजपुत्र उत्तराधिकारी होगा। उसके अभाव मे राजपुत्री [अगर वह किसी दूसरे राज्य की रानी न हो तो] राजपुत्री के अभाव मे रानी की अनुमति हो तो राजा का सगा भतीजा, उसके भी अभाव मे अन्तिम शासक के रूप मे रानी, राज्य करेगी। रानी के देहान्त के बाद राज्य भारत सरकार के हाथ मे पूरे रूप मे आ जायगा। भारत सरकार या तो उसका स्वतन्त्र एक प्रान्त बना देगी अथवा किसी प्रान्त मे मिला देगी।

ड—इस प्रकार जो राज्य भारत सरकार मे मिला दिया जायगा उसकी राजधानी मे अंतिम राजा और अंतिम रानी का एक विशाल स्मारक होगा। जिस मे राजा और रानी की मूर्त्तियाँ रहेगी और चारो तरफ एक बाग होगा। यह स्मारक प्रथम श्रेणी की रियासतो के लिये करीब दस लाख रुपये के खर्च से, दूसरी श्रेणी की रियासतो के लिये करीब पाच लाख रुपये के खर्च से और तीसरी श्रेणी की रियासतो के लिये करीब दो लाख रुपये के खर्च से बनाया जायगा। अगर राजा या रानी ने यह इच्छा प्रदर्शित की होगी कि उनकी खानगी जायदाद भी उनके स्मारक बनाने या किसी दूसरे ढग से कोई दूसरा स्मारक तैयार कराने मे लगायी जाय तो उसके अनुसार कार्य किया जायगा।

देशी राज्योकी इस प्रकार कायापलट हो जाने से भारतीय जनता को और राजाओ को, दोनो को लाभ है।

भारतीय जनता को तो यह लाभ है कि राजाओ के साथ जो सघर्ष है वह मिट जायगा और राजा लोग भारत की उन्नति करने मे और जन सेवा करने मे दत्तचित्त हो जायगे। निःसन्देह राजाओ को जो विशेष सुविधाएँ रहेगीं वे निरतिवाद की नीति के कुछ बाहर जाती है। उनका खर्च राष्ट्राध्यक्ष की अपेक्षा भी बढ जाता है। फिर भी वर्तमान परिस्थिति की अपेक्षा वह परिस्थिति कई गुणी अच्छी है। राजाओ का कुछ पूँजीपतित्व अवश्य बढा रहता हैं पर पूँजीवाद नहीं बढता। इससे विशेष हानि कुछ नहीं है। राज्य मे उत्तरदायी शासन स्थापित हो जाने से राजा लोग जो प्रजा से दूर पडे हुए है वे निकट आजायगे। परस्पर का सकोच और भय दूर होजायगा। एक दूसरे के सहयोगी और प्रेमी बन जॉयगे। राजाओ के मनमे भी भारत से विशेष प्रेम हो जायगा। इसलिये भारतीय प्रजा को चाहिये कि वह देशी राज्योके विषय मे उपर्युक्त नीति से सहमत हो जाय।

बहुत से लोग राजाओ को नष्ट कर देने की बाते किया करते है। इस तरह की बातो से राष्ट्र की शक्ति छिन्न भिन्न होती है। राजा लोग अभी अनियन्त्रित शासक हैं अथवा जिसके

नियन्त्रण मे है वह सत्ता भारतीय लोकमत की नहीं है। राजाओ को उखाड देने की बातो से दो सत्ताएँ भारतीय लोकमत के विरुद्ध खडी हो जाती है। बाहर की सत्ता से लडा भी जा सकता है पर भीतर की सत्ता के साथ लडाई छेडने से राष्ट्र की शक्ति के टुकडे टुकडे हो जाते है। राष्ट्र निर्बल हो जाता है।

कुछ लोग ऐसे है जो राजाओ के विषय मे कुछ नहीं बोलते अथवा कह देते है कि राजाओ को ज्यो का त्यो रक्खेगे। पर इससे राजाओ की शका दूर नहीं होती। भारत मे जो उथल पुथल मची हुई है उसको देखते हुए राजा लोग भी यह नहीं समझते कि भविष्य मे वे ज्यो के त्यो रह सकेंगे। वे कुछ त्याग करने को भी तैयार है पर उनको कुछ ऐसा निश्चित रूप मालूम होना चाहिये जिसे देखकर वे आश्वासन प्राप्त कर सके। हम आप को छेडना नही चाहते इत्यादि मीठी बातो-पर वे भरोसा नहीं रख सकते। वे तो यह समझते है कि आप नहीं छेडना चाहते तो आप का साथी या शिष्य छेडेगा दूसरे लोग छेडेंगे। म. गाधी न छेडेगे तो प. जवाहिरलाल छेडेगे। जबतक कि उनके विषय मे कोई जिम्मेदार व्यक्ति नहीं (व्यक्ति तो आज है कल नही) किन्तु कोई जिम्मेदार सस्था (उदाहरणत. काग्रेस) स्पष्ट शब्दो मे कुछ घोषणा नही करती तबतक राजा लोग कैसे आश्वासन प्राप्त करेगे। राजा लोग यहा तक तो सहमत हो जायगे कि रियासतो की बुराईयाँ चली जाँय पर वे यह जरूर चाहेगे कि उनका व्यक्तित्व बना रहे वे राजा बने रहे और अमुक सुविधाएँ भी [भले ही वे काफी मर्यादित हो] पाते रहे।

ऊपर की योजना मे दोनो बाते है इसलिये देश के नेताओ को और काग्रेस को उसका समर्थन करते हुए स्पष्ट घोषणा करना चाहिये भले ही आवश्यकतानुसार उस मे थोडा बहुत परिवर्तन कर लिया जाय।

राजा लोग अगर इस विषय मे कुछ विचार करेगे तो उन्हे बहुत से लाभ दिखाई देगे। कुछ का सकेत यहा किया जाता है—

१—कुप्रबन्ध आदि की जिम्मेदारियो से बच जावेगे इससे जो उनका अपयश फैलता है वह दूर हो जायगा।

२—भारत सरकार के एजेन्ट. से उन्हे डरते रहना पडता है, और भीतर ही भीतर उन से काफी अपमानित होना पडता है। प्रजा का बल न होने से उन्हे यह अपमान सहना पडता है। परन्तु पीछे यह अपमान न सहना पडेगा।

३—एक तरफ निर्बलो पर अत्याचार और दूसरी तरफ बडी सत्ता से भय, इन दोनो दोषो से मनुष्यता नष्ट होती है और इससे सच्चा आनन्द नहीं मिलता और न सच्चे मित्र मिलते है। पैसे के बल पर नौकर मिलते है धनके लोभ से चापलूस मिलते है, हृदय से प्रेम करनेवाले नहीं मिलते। क्योंकि राजाओं की वर्तमान परिस्थिति प्रजा के ऊपर बोझ सरीखी है। जहा सच्चा प्रेम और भक्ति नहीं है और जीवन बोझ है वहा सच्चा आनन्द कहा से मिलेगा।

४—वर्तमान मे राजाओ का जीवन बहुत कुछ पराधीन है। वे प्रजा के सम्पर्क मे आ नही सकते न सार्वजनिक कार्यो मे भाग ले सकते है। जरा जरासी बात के लिये उन्हे बडी सत्ता का मुँह ताकना पडता है। अधिकार परिमित हो पर निश्चित हो और किसी के द्वेष का विषय

न हो और उन मे नागरिकता की वास्तविक सुविधाएँ हो तो उसमे जो आनन्द और शान्ति है वह अन्यत्र नही।

५—भारत जिस दिशा मे आगे बढ रहा है उसे देखते हुए यह निश्चयात्मकरूप मे कहा जा सकता है कि राजाओ की स्थिति सुरक्षित नही है। जिस युग मे बडे बडे साम्राज्यो के मिटने मे देर नही लगती उस युग मे राजाओ के उखडने मे देर न लगेगी। यह ठीक है कि राजा अपनी शक्ति का उपयोग करके प्रजा की प्रगति मे रोडे अटका सकते है पर इससे इतना ही होगा कि आज का कार्य कल हो पायेगा। पर वह कल राजाओ के लिये बहुत भयकर होगा। प्रजा का कोप खुदाकी चक्की की तरह है जो धीरे धीरे चलती है पर अच्छी तरह पीसती है। इस के लिये सब से अच्छा उपाय यही है कि प्रजा के साथ राजा लोग उपर्युक्त शर्तोपर सुलह करले, इससे वे भी सदाके लिये निश्चित रहेगे और प्रजा की भी उन्नति होगी। राष्ट्र की उन्नति के साथ वे भी उन्नत हो सकेगे।

प्रजा के साथ सघर्ष होने मे अगर वे सफल भी होगे तो भी चैन से न रह पावेगे और अगर असफल हुए तो मिट जावेगे। सफल होने की सम्भावना बहुत कम है। वे नही तो उनके उत्तराधिकारी सकट मे पडेगे। इस प्रकार के अशान्तिमय विद्रोहमय चिन्तित जीवन की अपेक्षा प्रजा के साथ सुलह करके शान्तिमय प्रेम मय जीवन बिताना बहुत अच्छा है।

६—ऊपर की योजना मे राजाओ को वेतन या भेट आज की अपेक्षा कम रक्खी गई है पर सच पूछा जाय तो उसमे कष्ट कुछ नही है क्योकि महल मकान ठाठ आदि तो फिर भी रहेगा और उसका खर्च राज्य देगा। भोजन वस्त्रादि के लिये जो दिया जायगा वह कम नहीं है। हा, ऐयाशी के उन्माद के लिये पैसा नहीं मिलेगा और इससे उन्हे बडा लाभ होगा। आज दुर्व्यसनो के कारण उनका जीवन बर्बाद हो जाता है और वे बाहर से वैभव-पूर्ण होने पर भी भीतर से खोखले और दुखी होते है। इसमे राजाओ का ही अपराध नहीं है, राजाओ के हाथ मे जो अनियान्त्रित साधन है उनका अपराध भी है। जहा अनियन्त्रित धन और प्रभुत्व हो वहा देवता भी दानव बन सकते है फिर राजा तो राजा ही है। इस दानवता से राजाओ का जीवन सुख शान्ति मय नही हो पाता। इसलिये यह आर्थिक नियन्त्रण उनके जीवन को पवित्र और सुख शान्तिमय बनाने मे सहायक होगा। आज उनके विषय मे प्रजा का ऐसा खयाल है कि राजा लोग लाखो रुपये मुफ्त मे उडा जाते है पर निरतिवादी योजना के अनुसार सुलह हो जाने पर उन पर से यह आक्षेप निकल जायगा इसलिये वे प्रजा के प्रेमपात्र हो जायगे साथ ही उनका वैभव या ठाठ करीब ज्यो का त्यो बना रहेगा। इस प्रकार दोनो ओर राजाओका कल्याण ही है।

इस प्रकार निरतिवादी योजना के अनुसार राजाओ और भारतीय जनता के बीच सुलह हो जाने से राजाओ का भी हित है और भारतीय जनता का भी हित है। हा, थोडा थोडा त्याग दोनो को करना पडेगा जो कि उचित है।

उपसंहार

निरतिवाद की यह योजना पत्थर की लकीर नही है इसमे अनुभव और युक्ति के आधार पर

थोडा बहुत परिवर्तन किया जा सकता है सो वह तो समय आने पर हो जायगा। अभी तो उस की आत्मा को समझ कर अपनाने की कोशिश करना चाहिये।

यद्यपि श्रीमत्ता पर इसमे अकुश है पर अगर श्रीमान लोग विचार करेगे तो उन्हे मालूम होगा कि उन्हे दुःखी होने का कोई कारण नही है बल्कि उनकी अनियन्त्रित लालसाओ को रोककर उन्हे एक प्रकार की शान्ति दी गई है और प्रजा के कोप और ईर्ष्या से बचाया गया है। और दानादि के रूप मे जीवन को सफल बनाने की ओर उन्हे परिचालित किया गया है।

साम्यवादियो से मै कहूगा कि भारत की परिस्थिति पर विचार करे। साम्यवाद का पौधा इस देशकी मिट्टीमे लग सकता है या नहीं ? यदि लग सकता है तो उसके लिये खाद तथा रक्षा के साधन हम जुटा सकते है या नहीं यह एक प्रश्न तो है ही, साथ ही यह भी एक प्रश्न है कि साम्यवाद क्या स्थिर चीज बन सकती है ? अभी तो उसकी परीक्षा हो रही है। और ज्यो ज्यो समय बीतता जा रहा है त्यो त्यो वह निरतिवाद की ओर ही बढता जा रहा है। भय है कि कही आवेग मे या किसी क्राति द्वारा वह निरतिवाद की सीमा का उल्लघन कर पूँजीवाद मे न चला जावे। कुछ भी हो पर कम से कम अभी वह निरतिवाद की ओर जा रहा है। ऐसी हालत मे हम निरतिवाद को ही अपना कार्यक्रम बनावे और दूसरो की भूलो से लाभ उठाकर विचारपूर्वक अपना पथ निर्माण करे तो यह सब नकल करने की अपेक्षा कही श्रेयस्कर है।

कांग्रेस मे 'सोशलिस्ट पार्टी' के नाम से जो दल बना हुआ है वह निरतिवाद के दृष्टिविन्दु को सामने रख कर कार्य करे और श्रीमानों को गाली देने मे अपनी शक्ति खर्च न करे तो देशको उसके द्वारा कुछ ठोस सेवा मिल सकती है।

साम्यवादी दलमे गाली न देने वाले जिम्मेदार व्यक्तियो की-त्यागियो की-विद्वानो की-कमी नहीं है। जो गाली ही देते है उनका भी कुछ अपराध नही है। बात यह है कि यहा की भूमि के अनुकूल निश्चित योजना न होने से इस प्रकार की अस्तव्यस्तता स्वाभाविक है। मै समझता हू कि निरतिवाद की योजना साम्यवादियो को भी अपने ध्येय के अनुकूल और व्यवहारू मालूम होगी।

बहुत से लोग इस योजना को राजनैतिक योजना समझेगे। इसमे सन्देह नहीं कि इसका सम्बन्ध थोडा बहुत राजनीति से है भी। इस योजना के कार्य--परिणत होने पर राजनैतिक परिवर्तन होना अनिवार्य है। पर मै राजनीति के अग के रूप मे इस योजना को नहीं रख रहा हू। मै तो इसे सामाजिक क्रान्ति या सामाजिक सुधार के रूप मे रख रहा हू। बल्कि दूसरे शब्दो मे मै इसे धार्मिक समझता हू।

पुराने समय मे धर्म और समाज के नाम पर ही लोग परिग्रह का त्याग करते थे, दान करते थे, अपने व्यापार को सीमित करते थे, राजा लोग और श्रीमान लोग अपने सर्वस्वका त्याग करके भिक्षुक बन जाते थे। कोई भिक्षुक अपने द्वार से भूखा निकल जावे तो लोग शर्मिन्दा होते थे और समझते थे कि हमसे कोई पाप हो गया है। राजसत्ता भी समाज के इस प्रभाव की अवहेलना न कर सकती थी।

आज हमारे सामाजिक और धार्मिक जीवन मे यह सब नहीं रह गया है। और राजसत्ता बिलकुल अलग जा पडी है

निरतिवाद इन सब को मिलाकर, सब की सुवि-धाओ का विचारकर पुराने युगको वापिस लाना चाहता है पथ-भ्रान्ति दूर कर देना चाहता है। पर वह पुराना युग ज्यो का त्यो तो वापिस आवेगा नहीं, उसका तो पुनर्जन्म ही हो सकेगा। निरतिवाद के रूप मे उसका पुनर्जन्म ही समझना चाहिये। किसी की दृष्टि मे यह धार्मिक है, किसी की दृष्टि मे आर्थिक और किसी की दृष्टि मे राजनैतिक। अपनी अपनी दृष्टि है।

ऐसी कौनसी योजना है जिस पर लोग हँसे न हो या जिसकी निन्दा न की हो। सो इसके विषय मे भी होगा। उन लोगो से मुझे कुछ कहना नहीं है। पर जिनको यह कार्यकारी जचे, जो इस कार्य के लिये सगठन करना चाहे, तन मन वचन धन से सहयोग करना चाहे उनको सादर निमन्त्रण है।

अति और निरति

'अति' इधर कही अति उधर कही, 'अति' ने अन्धेर मचाया है।
कोई कण कण को तरस रहा, अति-उदर किसी ने खाया है।
या तो नचती उच्छृखलता, अथवा मुर्दापन छाया है।
'अति' का यह अति अन्धेर देख, प्रभु निरतिवाद बन आया है।

इक्कीस सन्देश

'सत्यसमाज की माँगे' इस शीर्षक से जो इक्कीस सन्देश जनता के सामने रक्खे गये थे उन पर बहुत से विद्वानो और समाचार पत्रोका ध्यान गया है। कुछ विद्वानो ने कुछ मतभेद भी प्रगट किये है। मै उनकी यहा अक्षरश आलोचना नही करना चाहता। फिर भी उनकी आलोचनाओ पर ध्यान देकर जो कुछ बदलने लायक मालूम हो उसे बदलना, और जिनका खुलासा करना जरूरी हो उनका खुलासा करना आवश्यक समझता हू। इसलिये यहा प्रत्येक सन्देश का सुधरा हुआ रूप और उसका भाष्य किया जाता है।

सत्यसमाज हरएक बात पर निरतिवाद की दृष्टि से विचार करना चाहता है। वह किसी भी दिशा मे इस प्रकार अति नहीं करना चाहता कि वह तत्त्व कल्याणकर होने पर भी अतिमात्रा मे होने के कारण अकल्याणकर बन जाय। अच्छी से अच्छी चीज भी अगर अधिक मात्रा मे हो जाय। अपनी मर्यादा भूल जाय तो अकल्याणकर हो जाती है। जिस प्रकार अँधेरा आखो को बेकाम कर देता है। उसी प्रकार तीव्र प्रकाश की चकाचौंध भी ऑखो को बेकाम कर देती है इसलिये अतिअधकार और अतिप्रकाश दोनो ही अकल्याणकर है। कल्याणकर है निरति=अति का अभाव।

सत्यसमाज के इक्कीस सन्देश किस आशय को लेकर है और निरतिवाद की कसौटी पर कसे जाकर वे किस रूप मे व्यावहारिक बन सकते है इसी बात का दिग्दर्शन मुझे यहां कराना है।

सन्देश पहिला

सब मनुष्य अपने को मनुष्य जाति का ही मानें। रग, देश, व्यापार, कुलपरम्परा आदि के भेद से जातिभेद न माना जाय, अर्थात् इन कारणो से रोटी बेटी व्यवहार सीमित न रक्खा जाय। न कोई जाति के कारण ऊँच नीच छूत अछूत आदि समझा जाय।

भाष्य--जातीयता की निशानी स्वाभाविक दाम्पत्य है। जहा विजातीयता होती है वहा स्वाभाविक दाम्पत्य नही होता जैसे हाथी घोडा ऊँट आदि जानवरो मे स्वाभाविक दाम्पत्य नही है इसलिये हम हाथी घोडा आदि को एक एक जाति कह सकते है। परन्तु मनुष्यो के भीतर जो जातिभेद की कल्पना की गई वह ऐसी नहीं है उस मे ऐसा आकारभेद या शरीरभेद नहीं है कि हम भारतीय और अंग्रेज को आर्य और मंगोलियन को ब्राह्मण और शूद्र को भिन्न भिन्न जाति का कह सके। इन मे परस्पर दाम्पत्य हो सकता है वंशपरम्परा चल सकती है इसलिये मनुष्य मात्र को एक जाति का समझना चाहिये।

फिर भी दाम्पत्य को अगर वैषयिक सम्बन्ध ही मानलिया जाय और दाम्पत्य को सिर्फ इसीमे सीमित कर लिया जाय तो यह मनुष्य का पशुता की ओर पतन होगा। मनुष्य के दाम्पत्य मे शारीरिक ही नहीं किन्तु मानसिक समन्वय की भी आवश्यकता है। इसलिये सौन्दर्य, सदाचार, खान पान की समता, भाषा आदि बातो के देखने की भी आवश्यकता है। परन्तु इन बातो को लेकर जातिभेद न बनाना चाहिये। अभी जाति के नाम पर जो भेद बना लिये गये है उनमे कोई ऐसी विशेषता नही है जो दूसरो मे न पाई जाती हो इसलिये अनुकूल सम्बन्ध ढूढने के लिये अमुक गुणो और अपनी आवश्यकताओ का ही विचार करना चाहिये न कि कल्पित जाति का। दाम्पत्य के लिये जिन जिन गुणो को हम चाहे उनका विचार करे परन्तु सब कुछ मिल जाने पर भी सिर्फ कल्पित जातिभेद से न डर जॉय। आवश्यक गुणो को कसौटी बनाकर मनुष्य मात्र के साथ सम्बन्ध करने को हम तैयार हो। और दूसरा जो तैयार होता हो उसे सहारा दे उसके साथ सहयोग करे।

बहुत से लोग सैद्धान्तिक रूप मे इस सर्व-जाति-समभाव को मानते है पर किसी कारण से उन्हे अमुक जाति से घृणा होती है। जैसे अमेरिका मे अमेरिकन लोग सबसे समभाव रक्खेगे परन्तु उसी देश मे बसनेवाले हब्शी लोगो से न करेगे इसका कारण यह दुरभिमान है कि एक दिन ये हब्शी हमारे गुलाम थे और आज बराबरी का दावा करते है। वास्तव मे उनमे कोई विषमता नहीं है। एक दिन जो हब्शी पशु सरीखे थे वे ही आज सभ्यता शिक्षा आदि मे अमेरिकनो के बराबर है इसीसे मालूम होता है कि मनुष्य क्षेत्रादि परिस्थितिके भेद से विषम मालूम होता है अन्यथा मूल मे वह एकसा-सजातीय है।

कुछ राजनैतिक कारणो से एशिया, खासकर भारत मे गोरी जातियो के विषय मे घृणा है क्योकि उनने अन्य जातियो पर बहुत अत्याचार किये है और छलबल से सताया है। निःसन्देह पाप घृणा की वस्तु है। और उस कारण से पापी से भी घृणा हो जाय तो क्षम्य है परन्तु पापी की ज़ाति को मौलिक रूप मे सदा के लिये जुदा समझ लेना भूल है। कुशासन से हम घृणा करेगे इसके लिये कुशासक को भी सतायेंगे पर उस जाति मात्र को बुरा समझना भूल है। पशु-बल और अधिकार आने पर मनुष्य मे अत्याचार की प्रवृत्ति होने लगती है इसके लिये हम उसे दड दे सकते है लेकिन समूह मात्र से घृणा नही कर सकते। समूह मे एक दो प्रतिशत अच्छे आदमी भी हो सकते है उनसे घृणा नहीं कर सकते। राजनैतिक आदि परिस्थितियो के बदल जाने से वे लोग मित्र बन जॉयगे इस मे कोई सन्देह नही। इसलिये हमे गोरे काले पीले आदि के कारण किसी से घृणा न करना चाहिये न विषमभाव रखना चाहिये। हा, अत्याचार के विरुद्ध लडना चाहिये इसलिये हम अत्याचारी से लड सकते है, पर उसको अत्याचारी समझ कर न कि विजातीय समझकर। अत्याचार का बदला चुक जाने पर या अत्याचार दूर हो जाने पर हम प्रेम भी करेगे।

खाने पीने मे हमे भोजन की शुद्धता, स्वास्थ्यकरता स्वादिष्टता स्वच्छता आदि का ही विचार करना चाहिये न कि जाति का। विवाह सम्बन्ध मे अनुकूल शरीर मन आदि का विचार

करना चाहिये न कि जाति का, छूताछूत के विचार मे सक्रामक रोगो या गदकी से बचने का ही विचार करना चाहिये न कि जाति का, यह त्रिसत्री सर्व-जाति-समभाव की सूचक है। इस मे निरतिवाद की भी रक्षा हुई है। जाति के नाम पर जो कल्पनाएँ है वे एक अति है और जाति तोडने के नाम पर शुद्धि, स्वच्छता अनुकूलता आदि का विचार न करना दूसरी अति है। निरति मध्य मे है।

सन्देश दूसरा

सभी मनुष्य सर्व धर्म समभावी हो किसी धर्म सस्था मे विशेष रुचि रखना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर रहे पर उस सम्प्रदाय मे किसी का ऐसा अन्धानुराग न रहे कि दूसरे सम्प्रदाय का आदर नष्ट करदे।

भाष्य--इस विषय मे भी अतिवाद फैला हुआ है। एक दल धर्मोंकी अन्धनिन्दा करता है और सब अनर्थों की जड इन्हे ही समझता है। दूसरा दल अपने किसी धर्म से इस प्रकार चिपटा हुआ है कि अपने धर्म मे आये हुए विकार भी वह नहीं देखना चाहता और उन विकारो को भी धर्म समझता है और अन्य धर्मो को दभ, नरक का रास्ता मानता है। दूसरो को नास्तिक काफिर मिथ्यात्वी आदि कहकर तिरस्कार करता है। निरतिवाद इन दोनो अतिवादो को पसद नहीं करता। .

धर्म-विरोधियो से वह कहना चाहता है कि धर्म का नाश नही हो सकता वह किसी न किसी रूप मे जीवित रहेगा उसका नाम भले ही बदल जाय। उसका प्राण नैतिकता और सदाचार है वह नष्ट नहीं हो सकता न होना चाहिये। भक्ति आदि जो उसके बाह्य अग है वे भी नष्ट नही हो सकते। प्रतीक बदल सकता है। मूर्त्ति न होगी नेता की कब्र होगी राष्ट्रीय झडा होगा। सच्चे समाज सेवको का आदर जनता के दिल से कैसे निकल जायगा? अगर निकल जाय तो इससे लाभ क्या? समाज सेवको को जीवन भर और कुछ आराम तो मिलता नहीं है मरने के बाद-और थोडा बहुत जीवन मे भी-लोग उन्हे याद करेंगे यही एक आशा का तन्तु उनको कठिनाइयो मे टिकाये रहता है। यह नष्ट हो जाय तो उनको सहारा क्या रहे और जनता मे भी कर्तव्य की प्रेरणा कैसे हो। सो धर्म के जो आदर भक्ति आदि अग है वे नष्ट नही हो सकते न होना चाहिये। धर्मो के नेता या सस्थापक अपने समय के सामाजिक क्रान्तिकारी है। धर्म भी एक सामाजिक वस्तु है। उन समाज-सेवको का हमे आदर करना चाहिये। और जब साधारण जनता आदर रखती है तब ऐसे शुभ कार्य मे उसके साथ सहयोग करके हम जनता के निकट मे क्यो न पहुँचे? हा, उन धर्म-प्रवर्तको को आप अलौकिक व्यक्ति या ईश्वर न मानिये। लोक सेवक महात्माओ के रूपमे ही उनका आदर कीजिये। उनके विषय मे जो अन्धश्रद्धा-पूर्ण कथाएँ और अतिशयोक्तियाँ प्रचलित है उनको न मानिये बल्कि उनका विरोध कीजिये। ईश्वर की सत्ता भी आप मानना चाहे माने न मानना चाहे न माने, पर यह अवश्य मानिये कि मानव जीवन के लिये नीति-सदाचार की आवश्यकता है और इसका प्रचार करनेवाले जन सेवक आदरणीय है। बस, धर्म का मानना हो गया। धर्म के नाम पर चलनेवाले ढकोसलो का आप खूब विरोध कीजिये।

अन्ध-श्रद्धा और धर्ममद को लेकर जो अतिवादी बने हुए है उनसे कहना है कि जैसे आपका

धर्म जगत् की शान्ति के लिये आया था उसी प्रकार दूसरे धर्म भी आये थे। सदाचार के नियम सभी धर्मों मे पाये जाते है । जो अन्तर है वह देशकाल का है सो होना चाहिये । ऐसी हालत मे आप अमुक धर्मवाली समाज मे पैदा हुए इसलिये वह धर्म सर्वोत्तम है इसमे सचाई क्या हुई ? आप हिन्दू मे पैदा हुए सो हिन्दू धर्म अच्छा और मुसलमान मे पैदा हुए इसलिये मुसलमान धर्म अच्छा या जैन मे पैदा हुए सो जैन धर्म अच्छा इसमे नि पक्षता विचारकता और तर्क नही है इसलिये इसका कुछ मूल्य नहीं । यहा धर्म की ओट मे अभिमान की पूजा है जो कि पाप-मूल है । सस्कारो के कारण अगर किसी धर्म विशेष से आपको आत्मीयता हो गई है तो धर्म के साथ घनिष्ठता रखिये पर इसीलिये दूसरे धर्मों की निन्दा न कीजिये और न अपने ही धर्म को स्वर्ग मोक्ष पहुँचाने का ठेका दीजिये। परीक्षा करते समय भी लोकहित को धर्म की कसौटी बनाइये अपने धर्म के अमुक वेष या रीतिरिवाजो को धर्म की कसौटी बनाकर दूसरे धर्मों की परीक्षा न कीजिये सभी धर्म अपने रूप को धर्म की कसौटी बनाकर दूसरो की परीक्षा करे तो सभी परस्पर मिथ्या साबित होगे फिर आपका धर्म भी मिथ्या होगा। लोकहित की दृष्टि से विचार करने पर और जिस देशकाल मे वह धर्म पैदा हुआ था उसदेश काल को नजर मे रखने पर सभी धर्म सन्तोपजनक मालूम होगे। हा, जो बाते अकल्याणकर हो उन्हे कदापि न मानिये पर दूसरो की ही नहीं, अपनी भी अकल्याणकर बाते न मानिये बल्कि जब दोप देखने की इच्छा हो तो पहिले अपनी धर्मसस्था के देखिये पीछे दूसरो की धर्म सस्था के। आत्मनिंदा बुरी नही है पर परनिन्दा बुरी है।

धर्म के विपय में निरतिवाद न तो किसी धर्म मे अन्धश्रद्धालु होने को कहता है न अन्ध-निन्दक, वह विवेकपूर्ण समभावी होने की प्रेरणा करता है। धर्म–सस्थापक महापुरुपो को न तो वह ईश्वर मानता है न वञ्चक। उन्हे लोक-सेवक पूर्वजो के समान आदरणीय-वन्दनीय समझता है और एक दूसरो के पूर्वजो का आदर करके परस्पर मे प्रेम बढाने का सन्देश देता है।

संदेश तीसरा

सम्प्रदाय या जाति के नामपर किसी को किसी भी प्रकार के विशेपाधिकार न रहे। न पृथक् निर्वाचन रहे।

भाष्य–सम्प्रदायो को और जातियो को जो विशेपाधिकार मिलते है उससे ईर्ष्या फूट अविश्वास आदि बढने के सिवाय और कुछ लाभ नहीं। राष्ट्रीय उदारता नष्ट होजाती है । और इन दलबन्दियो मे राष्ट्रका हित गौण होजाता है। हिन्दू मुसलमानो के प्रश्न को लेलीजिये। एक के प्रतिनिधि को दूसरे की कोई पर्वाह नहीं इसलिये दोनो को राष्ट्र की चिन्ता न होकर अपनी अपनी कौम की पर्वाह होती है। आपस मे ही आत्मरक्षा की चिन्ता मे सब परेशान है, विधायक कार्य या स्वतन्त्रता का कार्य कोई नहीं कर पाता या बहुत कम कर पाता है। जातीय दगे होते है तो उनका उपाय करने की अपेक्षा अपनी अपनी कौम को निर्दोप साबित करने की वकालत मे सब शक्ति खर्च हो जाती है। खैर, काग्रेस सरीखी एक असाम्प्रदायिक सस्था के होने से फिर भी गनीमत है। अगर हिन्दूसभा और मुसलिमलीग के ही प्रतिनिधि धारासभाओ मे रहे तो धारासभाओं के टग ऑफ वार मे राष्ट्र की धज्जिया उडजॉय। अगर हिन्दू मुसलमानो के अलग अलग प्रति-

निधि न हो तो हरएक प्रतिनिधि को हरएक कौम के मनुष्य का खयाल रखना पड़े और साम्प्रदायिक कटुता न हो।

परन्तु प्रारम्भ मे जब तक ठीक तौर पर विश्वास पैदा नही हुआ है तबतक निरतिवाद की नीति के अनुसार कुछ समझौते का मार्ग निकाला जा सकता है। इसके दो मार्ग है—

पहिला मार्ग-तो यह है कि न तो पृथक् प्रतिनिधित्व रहे न पृथक् निर्वाचन रहे किन्तु प्रतिनिधियो की सख्या नियत रहे। अल्पसख्यक कौमो के प्रतिनिधि उनकी जन सख्या के अनुसार नियत हो। पर चुनाव सामान्य ही हो। चुनाव होने के बाद अगर यह मालूम हो कि अमुक कौम के नियत प्रतिनिधि चुनाव मे नही आ सके कुछ प्रतिनिधि कम रह गये है तो जितने प्रतिनिधि कम रह गये हो उसी कौम के उतने प्रतिनिधि धारासभा अपने बहुमत से चुन ले। जैसे कही मुसलमानो के तीस प्रतिनिधि नियत है और चुनाव मे पच्चीस ही आये तो पाच प्रतिनिधि धारासभा फिर चुन लेगी। इस प्रकार तीस की संख्या पूरी हो जायगी।

दूसरा मार्ग-यह है कि पृथक् प्रतिनिधित्व तो रहे परन्तु पृथक् निर्वाचन न हो। इस विषय मे निम्न लिखित नियमो का पालन होना चाहिये।

१-बहुसख्यक समाज के लिये प्रतिनिधि नियत न किये जाय।

२-अल्प सख्यक समाजके लिये भी उस की सख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधि नियत न किये जाय।

३-पृथक् प्रतिनिधित्व उन्ही को दिया जाय जिनके दायभाग आदि के कानून जुदे हो और जाति की दृष्टि से अपने को जुदा मानते हो।

तीसरा मार्ग—पृथक् प्रतिनिधित्व कर देने पर भी अगर सम्मिलित निर्वाचन से सन्तोप न होता हो और अविश्वासादि कारणो से कुछ समय तक पृथक् निर्वाचन भी चालू करना हो तो आशिक पृथक निर्वाचन की नीति काम मे लेना चाहिये। बहुसख्यक समाज नियत प्रतिनिधित्व न मॉगे तो अच्छा है परन्तु अगर मॉगे ही तो वह भी दिया जा सकता है।

इसमे निम्न लिखित नियम रहेगे।

१-अपने अनुपात से अधिक किसी को प्रतिनिधित्व न रहेगा।

२-वह अनुपात सौ मे अस्सी प्रतिनिधियो के साथ लगाया जायगा। बाकी बीस प्रतिनिधि सामान्य निर्वाचन के लिये रहेगे।

३-दस दस वर्ष के बाद सामान्य निर्वाचन के प्रतिनिधियो की सख्या दस प्रतिशत बढती जायगी। और जातीय निर्वाचन की घटती जायगी।

४-सामान्य निर्वाचन का क्षेत्र ७० प्रतिशत होने पर पूर्ण सामान्य निर्वाचन कर दिया जायगा। इस प्रकार पचास वर्ष मे पूर्ण राष्ट्रीयता प्रचलित हो जायगी।

इन नियमो को एक उदाहरण देकर स्पष्ट करना जरूरी है। मानलो किसी प्रान्त की धारासभा मे सौ बैठके है। ५० मुसलमानो की ३० हिन्दुओ की १५ सिक्खो की ५ बाकी कौमो की। इन सौ बैठको मे से २० बैठके सामान्य निर्वाचन के लिये रहेगी। इन बैठको के लिये हरएक कौम का आदमी खडा रह सकेगा। और हरएक कौमका आदमी वोट दे सकेगा। बाकी ८० बैठके इस तरह बट जायगी।

नाम	जन सख्या	बैठके
मुसलमान	५०	४०
हिन्दू	३०	२४
सिक्ख	१५	१२
फुटकर	५	४
साधारण बैठके	×	२०
	१००	१००

पहिला मार्ग उत्तम है दूसरा मध्यम है तीसरा जघन्य है। अगर जघन्य मार्ग भी न अपनाया जाय तब इसे भयकर दुर्भाग्य ही समझना चाहिये।

व्यवस्था कोई भी अपनाई जाय बहुसख्यक तो बहुसख्यक रहेगे ही, पृथक् निर्वाचन से अल्प-सख्यक न बन जॉयेगे। अल्प-सख्यकता से पैदा होने वाले भय का उपाय पृथक् निर्वाचन नही है किन्तु विश्वास प्रेम और राष्ट्रीयता को महत्त्व देना है। यह बात मुसलमान और हिन्दू दोनो को समझ लेना चाहिये।

संदेश चौथा

प्रत्येक नगर और गाव मे एक एक धर्मालय हो जिस मे उस देश मे प्रचलित मुख्य मुख्य धर्म देवो-महापुरुषो की मूर्त्तियॉ हो। धर्मालय मे आने मे जातिपॉति का बधन न हो। सभी धर्म वाले वहा प्रार्थना करे। वहा पशुबलि न हो। सम-भावी व्याख्यान या अन्य कार्य हो।

भाष्य--इसे नगर-मन्दिर या ग्राम--मन्दिर भी कह सकते है परन्तु धर्मालय शब्द सर्वोत्तम है। पहिले मैने इसे ग्राम-मन्दिर कहा था पर एक सज्जन ने यह पसद नही किया। मुसलमान समाज को इस शब्द से विरोध है इसका कारण एक भ्रम है। मुसलमान भाई मदिर शब्द का अर्थ हिन्दू का धर्म-स्थान समझते है जब कि बात यह नही है। मदिर शब्द का अर्थ भवन या घर है। यह बात अवश्य है कि रूढि मे प्रतिष्ठित घर को ही मन्दिर कहते है जैसे राज-मदिर--राजा का घर, शिक्षामदिर-पाठशाला। देवो के घर को देवमदिर कहते है पर देव-मदिरो की बहुलता होने से अकेला मदिर शब्द देव-मदिर के लिये रूढ हो गया। जब किसी शब्द के साथ मिल कर मदिर शब्द आता है तब उसका अर्थ व्यापक--घर-हो जाता है। फिर भी यह शब्द भ्रम से भी सम्प्रदाय की सूचना न दे इसलिये इस शब्द के बदले मे यहा धर्मा-लय शब्द रक्खा गया है।

सत्यसमाज के मदिर की जो योजना है जिस मे सभी धर्मो के स्मारक रखने का विधान है उसका नाम भी सत्य-मदिर की जगह धर्मा-लय कर दिया जाता है। क्योकि हिन्दू, मुसल-मान, जैन, ईसाई आदि सभी को उस मे एकसा स्थान है।

इस विषय मे निम्न लिखित प्रश्न प्रदर्शित किये गये है जिन का खुलासा करना जरूरी है। १--मूर्त्तिविरोध २--एक धर्म पूजना ही बुरा है फिर सब धर्म पूजने से और भी बुरा होगा। ३-वहा दिन भर क्या होता रहेगा?

१-मूर्त्ति पूजा के विषय मे मैने स्वतन्त्र लेख मे ही विस्तार से लिखा है। यहा सक्षेप मे यही कहना है कि जब तक मनुष्य के पास हृदय है तबतक अपनी भावनाओ को जाग्रत रखने के लिये स्मारक रखना अनिवार्य है। फिर चाहे वह पुतला, ध्वजा, त्रिशूल, नख, केश, हड्डी, स्तभ, चरखा, लिखे हुए अक्षर, पुस्तक, कब्र या समूचा मकान हो। अगर उसके सम्पर्क से हमारे हृदय

मे कोई भावना व्यक्त होती है तो वह मूर्ति ही है। उसकी पूजा किसी जड पिंड की पूजा नही है न उसमे जड पिंड का गुणानुवाद किया जाता है वह तो किसी आदर्श की पूजा है। हो सकता है कि किसी महात्मा को उस सहारे की आवश्यकता न हो तो वह उसपर उपेक्षा करेगा परन्तु जनसाधारणके लिये तो अवश्य चाहिये। मूर्ति न रखने से एक तरह की मूर्ति विरोधी कट्टरता पैदा होती है। मूर्ति-पूजक तो मूर्तिशून्य स्थान मे भी जा सकता है मूर्ति का विरोधी मूर्ति के सामने जाने मे भी अपमान समझता है। समभाव के लिये यह कट्टरता घातक है।

अगर हम धर्मालय मे सभी धर्मों का कोई न कोई स्मारक न रक्खेगे तो सर्व-धर्म-समभाव पटाने के लिये और सभी धर्मों के धर्मस्थान के विषय मे आदर पैदा करने के लिये हमारे पास कोई अवलम्बन न रह जायगा। हमारे मनमे मन्दिर आदि स्थानो से घृणा ही रहेगी। यह घृणा जाना चाहिये। अगर मूर्ति का हमे अभ्यास न होगा तो हम हिन्दू मन्दिर, जैन मदिर, बौद्ध मन्दिर, गिरजाघर (रोमन केथौलिक) मे आदर के साथ कैसे जॉयगे। हमारे हृदय मे इनके लिये जगह न रहेगी यह वासना द्वेष और घृणा के बीज का काम करेगी।

एक बात और है। अगर धर्मालय मे किसी धर्म का कोई स्मारक न हो तो वह थोडे से सुधारको की चीज रह जायगी। न तो उस स्थान के विषय मे साधारण जनता के दिल मे पवित्रता का भाव होगा न किसी को उसमे आत्मीयता पैदा होगी। वह एक साधारण टाउन-हॉल बनकर रह जायगा। सर्व-धर्म-समभाव के लिये उसमे स्मारक रखना आवश्यक है और जब स्मारक ही रखना है तब उनमे मूर्त्तियॉ सर्वोत्तम है।

२--एक धर्म पूजने मे भी कोई विशेष बुराई नही है अगर कदाचित मानली जाय तो भी सब धर्म पूजने मे बुराई नही हो सकती। एक धर्म पूजने मे मनुष्य का हृदय सकुचित अन्धश्रद्धालु अहकारी हो सकता है जब कि सब धर्म पूजने मे ये दोष निकल जाते है। विविधता मे जब समता देखने की उदारता आजाती है तब विवेक आही जाता है। हा, सब धर्म की सभी बाते मानने की जरूरत नही है, विवेकपूर्वक सभी मे से अच्छी अच्छी बातो का चुनाव करलेना जरूरी है।

३--धर्मालय मे सुबह शाम प्रार्थनाऍ होगी। समय समय पर समभावी व्याख्यान होगे। पुस्तकालय वगैरह की योजना भी की जा सकती है। और भी सामूहिक कल्याण के कामो मे धर्मालय का उपयोग किया जा सकता है।

अभी योजना कठिन मालूम होती है पर दो चार जगह प्रारम्भ हुआ कि यह बात साधारण हो जायगी। सत्यसमाज ऐसे धर्मालयो के नमूने बनाना ही चाहता है।

संदेश पॉचवॉ

प्रत्येक नगर और गाव में एक रक्षक दल हो जिसमे सभी सम्प्रदाय और जाति के लोग शामिल हो। जातीय और साप्रदायिक प्रतिनिधित्व रखने वाले लोग उसमे शामिल न हो। इस दल के काम निम्नलिखित हो।

[क] कोई पुरुष किसी नारी को न छेड सके। नारी कहीं जाय तो वह अनुभव कर सके कि वहा मेरे शील और इज्जत की रक्षा होगी। हरएक धर्म और हरएक जाति का मनुष्य उसका रक्षक है।

[ख] सामूहिक झगडो को रोकना अत्याचार पीडितो को सहायता पहुचाना ।

[ग] भले आदमियो को सतानेवाले गुडो का दमन करना ।

[घ] आग लगने जल--प्रलय होने या और किसी तरह की आपत्ति आने पर सहायता करना ।

[ङ] नगर को साफ स्वच्छ रखने मे सहायता करना ।

भाष्य-यहा कुछ सशोधन खडे हुए है---

१--क्या गुडो का गुडापन हटाने के लिये उद्योग न करना चाहिये ?

२--गुडो के पीछे रह कर गुडो को पोसने और उनकी योजना करनेवालो के खिलाफ क्या कुछ न करना चाहिये।

३--क्या नारी को अपने शील की रक्षा के लिये ऐसे रक्षक दल पर ही अवलम्बित रहना होगा ?

४--भले आदमी अर्थात् पूँजीपति, गुडा अर्थात् गरीब, उसका दमन ठीक नही ।

५--क्या रक्षक दल को सशस्त्र तालीम न दी जायगी ?

६--दल को अहिंसक ही रहना चाहिये ।

७--जबतक यह साबित न हो कि एक स्त्री अपनी इच्छा से व्यभिचारिणी है उसे वह अत्याचारित ही समझेगातो स्त्री की आत्मरक्षा करने की शक्ति बढ सकती है ।

सूचनाएँ सुन्दर है । यहा मूल सन्देश मे मैने इन बातो पर प्रकाश नही डाला इसका कारण सिर्फ यही था कि मुझे नगर रक्षक दल के सिर्फ कार्य बताने थे । उन कार्यो को करने की परिस्थिति पैदा न हो या क्यो पैदा होती है आदि बातो पर विचार तो अन्यत्र विस्तार से किया गया है कई बातो पर स्वतन्त्र लेख तक लिखे है । फिर भी इन सब बातो का यहा कुछ स्पष्टीकरण करना उचित है ।

१--गुडापन हटाने के लिये अधिक से अधिक कोशिश करना चाहिये । उन्हे दु.सगति से बचाना चाहिये सदाचार की शिक्षा देनी चाहिये । उनकी सामाजिक कठिनाइयो को दूर करने का उपाय खोजना चाहिये । पर जबतक ये उपाय नही हुए तबतक रक्षकदल की आवश्यकता है । और परिस्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है कि बहुत समय तक यह आवश्यकता रहेगी । जब सारा ग्राम ही रक्षकदल बन जायगा तब रक्षक दल की अलग जरूरत न पडेगी ।

(२) गुडो के पीछे रहनेवाले सभ्य गुडो को भी गुडा समझना चाहिये और उनको ठिकाने लाने के लिये भी कोशिश होना चाहिये ।

३--रक्षक दल होने का यह मतलब नहीं है कि नारी उसी पर अवलम्बित रहे । नारी मे वीरता शक्ति और निर्भयता आना चाहिये उसके लिये भी कोशिश करना चाहिये । वह आततायी के प्राण ले सके और न ले सके तो अपने प्राण दे सके पर अत्याचार को सफल न होने दे, इतनी दृढता प्रत्येक नारी मे होना चाहिये । पर नारी को प्राण देने का अवसर न आवे इसके लिये रक्षक दल का उपयोग है ।

नि सन्देह पर-रक्षितत्व से परतन्त्रता आती है पर इस प्राणि जगत् मे थोडी न थोडी पर-रक्षितता और परतन्त्रता अनिवार्य बन गई है । हर आदमी को अपनी रक्षा करने मे समर्थ होना

चाहिये पर उसकी इस समर्थता की सीमा बहुत दूर नहीं है। उसे पुलिस की आवश्यकता पडती है और सरकार सरीखी सस्था का बोझ भी उसने उठाया है। व्यक्ति को जितनी सम्भव है उतनी शक्ति आत्मरक्षण के लिये पैदा कर लेना चाहिये पर बाद मे पररक्षितत्व आ ही जाता है। नारी के विषय मे यह बात कुछ अधिक मात्रा मे है। उसकी अग रचना ऐसी है कि उस पर नर का आक्रमण हो सकता है। पशुओ मे भी जहा नर और मादा किसी भी मनुष्य समाज की अपेक्षा अधिक स्वतत्र है, नर आक्रमणकारी देखा जाता है, फिर मानव समाज मे तो यह बात कुछ अधिक ही होगी। मानव समाज मे नर नारी का कार्यक्षेत्र कुछ ऐसा विभक्त है—और शान्ति और सुव्यवस्था की दृष्टि से वह बुरा नही है—कि नारी को कुछ और कमजोर हो जाना पडा है। किन्तु नारी को अधिक से अधिक बलशालिनी तो होना ही चाहिये, जराजरासी बात मे वह पुरुष का सहारा चाहे यह कमजोरी भी जाना चाहिये। फिर भी कुछ न कुछ सरक्षण की आवश्यकता तो है ही उसके लिये यह दल आवश्यक है।

४—दुर्भाग्य से भले आदमी का रूढ अर्थ पूँजीपति भी प्रचलित है पर यहा इस अर्थ मे यह शब्द नही है। भले आदमी का अर्थ है सज्जन पुरुष, चाहे वह गरीब हो या अमीर। श्रीमान् भी सज्जन होते है और गरीब भी। श्रीमान् भी गुडे होते है और गरीब भी।

५—रक्षक दलको सशस्त्र तालीम अवश्य देना चाहिये। यह राष्ट्ररक्षा की दृष्टि से भी उपयोगी है। पर शस्त्रो का उपयोग सम्हल कर ही करना चाहिये। जहा जातीय दगे हो वहा शस्त्रोके उपयोग से समस्या और जटिल हो जायगी। पशु बल या शस्त्रो का उपयोग नारी रक्षण आदि नैतिक कार्यो मे ही करना चाहिये।

६-साधारणतः दल को अहिंसक रहना चाहिये। खास कर घर के जातीय झगडो मे। पर गुडापन रोकने के लिये हिंसा का भी उपयोग किया जा सकता है।

७—नारी के विषय मे जो पक्षपात—पूर्ण मनोवृत्ति समाज मे घुस गई है वह अवश्य जाना चाहिये। इसके विषय मे मै विस्तार से अनेक बार लिख चुका हू।

नारी को सताया जाय और वही भ्रष्ट समझी जाय इससे बढकर अंधेर और क्या होगा। उसके विषय मे हमारी सहानुभूति बढना चाहिये और साथ ही अपनी असावधानता पर हमे लज्जित होना चाहिये और आक्रमणकारी को दड देना चाहिये। पर होता है इससे उल्टा यह अन्धेर जाना चाहिये।

रक्षक दल की रूप रेखा और कार्य—क्षेत्र के विषय मे थोडा बहुत परिवर्तन हो सकता है पर हर जगह ऐसे रक्षक दल की आवश्यकता है। स्त्री को न तो पगु बनाना चाहिये न बिलकुल अरक्षित छोडना चाहिये। यह निरतिवाद है।

सन्देश छट्ठा

वेद कुरान पुरान सूत्र पिटक बाइबिल आवस्ता ग्रथ साहब आदि किसी भी शास्त्र की दुहाई दूसरों के अधिकार या सुविधाओ मे बाधा डालनेवाली या किसी को विशेषाधिकार दिलानेवाली न समझी जाय। कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय युक्ति और अनुभव के आधार पर लोकहित की कसौटी पर कसकर किया जाय।

भाष्य—इन धर्मग्रथो ने एक जमाने मे लोगो की बहुत भलाई की है और इनके भीतर ऐसे नैतिक उपदेश भरे है जो आज भी हितकारी है। पर उनमे ऐसी बाते भी है जो उसी समय के लिये उपयोगी थीं। आज अगर उनका उपयोग किया जाय तो दूसरो के अधिकारो मे बाधा आ सकती है। देशकाल को देखकर विधि-विधान बनाना चाहिये। आजके युग मे आज की परिस्थिति देखकर विधान बनाना चाहिये। सैकडो हजारो वर्ष पुराने विधानो मे से तो कुछ चुने हुए विधान ही काम मे लाना चाहिये।

अपने अपने धर्मग्रथोपर जोर दिया जाय और अक्षरशः पालन किया जाय तो सत्यासत्य का निर्णय हो ही न सके क्योकि वस्तुस्थिति को कोई न देखे अपनी अपनी बात पकड कर सब रह जॉय। हमे यह याद रखना चाहिये कि धर्म शास्त्र अपने नैतिक विकास के लिये हैं दूसरो के ऊपर अपना बोझ लादने के लिये नहीं।

इस सन्देश पर भी कुछ सूचनाऍ आई है--

एक सूचना यह है कि इन ग्रथो की पुनर्रचना की जाय। इस बात पर मेरा ध्यान बहुत दिन से है। बल्कि सत्यसमाज के पहिले मैने यही काम शुरू किया था। बल्कि इन धर्मग्रथो के सार लिखे जाना चाहिये और इन पर समयोपयोगी समभावी टिप्पणियॉ भी लिखी जानी चाहिये। टिप्पणियॉ ऐसी हो जिससे लोगो की शास्त्रान्धता नष्ट हो जाय और विवेक या विचारशक्ति जाग्रत हो।

शास्त्रो के विषय मे न तो अन्धश्रद्धा रक्खी जाय न उनका सर्वथा बहिष्कार किया जाय। यह निरतिवाद है।

संदेश सातवॉ

नारी, नारी होने के कारण ही किसी अधिकार से वञ्चित न रक्खी जाय। शारीरिक भेद के कारण कार्यक्षेत्र का भेद व्यवहार मे रहे कानून मे नही। दायभाग मे नारी का अधिकार बढाया जाय। विधवाविवाह विधुरविवाह के समान समझा जाय। बहुपत्नीत्व की प्रथा कानून से बन्द कर दी जाय।

भाष्य—नर-नारी-सम्बन्ध एक ऐसी विकट समस्या है जो कानून के बल से सुलझ नही सकती। खासकर घर के भीतर तो यह और भी जटिल है। फिर भी इसकी रूप रेखा पर कुछ अंकुश लगाये जा सकते है। खासकर सामाजिक जीवन मे तो इसको बहुत स्पष्ट किया जा सकता है। निम्नलिखित बातो पर ध्यान रखने की आवश्यकता है।

१-धारासभाऍ म्युनिसपल आदि सस्थाओ मे, शिक्षा विभाग तथा अन्य प्रबन्ध विभाग मे भी नारी मे भेदभाव न रक्खा जाय। अध्यक्ष पद वगैरह भी स्त्रियो को दिये जॉय। हा, योग्यता का विचार तो सर्वत्र आवश्यक है।

२-आर्थिक अधिकार 'नारीका अधिकार' इस शीर्षक के वर्णन के अनुसार रक्खा जाय।

३-विधवाविवाह का अधिकार पूरा हो और इससे उसके स्त्रीजीवनमे बाधा न आवे।

४ तलाक के रिवाज को उत्तेजन न दिया जाय परन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियो का निर्देश किया जाय जब नारी तलाक दे सके। नारीको तलाक देने की सुविधा जितनी मिले पुरुष को उसमे कुछ कम मिले अथवा यह नियम और जोड दिया जाय कि परित्यक्त नारी जब तक अपना दूसरा

विवाह न करले तब तक उसके भरण पोषण का भार उसी पुरुष पर रहे जिसने तलाक दिया है। पर इसका निर्णय न्यायालय करे।

५-बहुपत्नीत्व की प्रथा जाना चाहिये। अगर किसी कारण से अपवाद रूप मे रहे तो उसके साथ अपवाद रूप में बहुपतित्व की प्रथा भी रहे अथवा नियोग का सुभीता मिले। जैसे कोई पुरुष सन्तान के लिये दूसरी शादी करना चाहता है तो करे, परन्तु उसकी पत्नी को सन्तान के लिये नियोग करने का सुभीता हो। अच्छी बात यही है कि न बहुपतित्व रहे न बहुपत्नीत्व।

६-शिष्टाचार मे नरनारी का समान दर्जा हो। योग्यताभेद से जो शिष्टाचार के रूपमे परिवर्तन होता है वह बात दूसरी है।

बडी बडी बातो मे यो कानून या लोकनीति कुछ अकुश लगा सकते है पर घरू बातो मे परस्पर का त्याग और प्रेम ही बडा कानून है। इसके बिना कोई भी कानून नर नारी की समस्या को नहीं सुलझा सकता।

हा, वातावरण ऐसा अवश्य होना चाहिये कि जो पुरुष को उद्दड बनाने से रोके। नारीको मार बैठना, अमर्याद गालियॉ बकने लगना, सब के सामने तीव्र अपमान कर बैठना आदि बातें अत्यन्त निंद्य समझी जाना चाहिये। इन बातो पर भी कानून नियन्त्रण नहीं कर सकता पर लोकनीति नियन्त्रण कर सकती है।

पुरुष पशुबल मे अधिक है इसलिये उसके अधिकार अधिक हों और नारी निर्बल है इसलिये उसके अधिकार कम हो यह दृष्टि जाना चाहिये।

इन सब समताओ के होने पर भी नारीका कार्यक्षेत्र घर के भीतर है और पुरुष का बाहर-जरूरत होने पर नारी को बाहर के काम भी करना चाहिये और पुरुष को भीतर के। नर नारी मे समता रहे और विषमता का समन्वय रहे यही निरतिवाद की दृष्टि है।

सन्देश आठवॉ

हिन्दू, मुसलमान, जैन, ईसाई, पारसी आदि के दायभाग के नियम जुदे जुदे न रहे। इस विषय मे नर नारी के अधिकारो की समानता जितनी अधिक सम्भव और व्यवहारोचित है उसी के अनुसार कानून बनाया जाय जो सभी सम्प्रदाय और जातियो के व्यक्तियो पर एकसा लागू हो। इसकी रूपरेखा शास्त्रो के आधार से नहीं किन्तु लोकहित और शक्यसमानाधिकार के आधार से बनना चाहिये।

भाष्य-फौजदारी कानून सबको एक सरीखे हैं दीवानी कानून सबको एक सरीखे है फिर दायभाग का कानून सब को जुदा जुदा क्यों हो? जुदे जुदे शास्त्रो मे दायभाग के कानून जुदे जुदे मिलते हैं उसका कारण यह है कि वे एक ही समय और एक ही जगह के बने हुए नहीं हैं। शास्त्रो ने उस समय के कानून मे फेरफार करके सुधार अवश्य किया और उससे जन-समाज को लाभ पहुँचाया पर आज जब कि सब एक जगह आ गये है तब उन सबसे अच्छा दायभाग कानून क्यो न बनाया जाय? एक हिन्दू स्त्री सिर्फ इसीलिये मनुष्योचित अधिकारों से वञ्चित रहे कि वह हिन्दू कुटुम्ब मे पैदा हुई इस प्रकार का अन्याय कदापि न रहना चाहिये।

उत्तराधिकारित्व का प्रश्न किसी एक सम्प्रदाय का या जातिका प्रश्न नहीं है वह मनुष्यमात्र का प्रश्न है इसलिये मनुष्योचित दृष्टि से ही उसका विचार करना चाहिये। इसमें किसी की

हानि क्या है। इससे उत्तराधिकारित्व की जटिलताएँ कम हो जायगीं। और बहुत से लोग जाति सम्प्रदाय रीति रिवाज आदि के विषय मे न्यायालय मे कुछ का कुछ साबित करते है वह सब झगडा दूर हो जायगा। सम्प्रदाय और जातियो को जो अनुचित महत्त्व प्राप्त है वह भी नष्ट हो जायगा। हरएक सम्प्रदाय के दायभाग मे जो त्रुटियॉ, या व्यक्ति के प्रति अथवा नारी के प्रति अन्याय है, वह नष्ट हो जायगा।

कोई कह सकता है कि हमको अपनी सम्पत्ति इसी तरह बाटना है। कानून किसी खास तरह बाटने के लिये जोर क्यो दे ?

पर इस के लिये कोई मनुष्य सम्पत्ति का 'विल' अपनी इच्छा के अनुसार बना सकता है। वर्तमान मे ही यही सुभीता है। उत्तराधिकारित्व तो किसी एक कानून से ही दिया जाता है, चाहे हिन्दू कानून हो या मुसलिम कानून। जब कानून का सहारा अनिवार्य है तब इस विषय मे एक सब से अच्छा कानून क्यो न बनाया जाय।

हमारे कानून मे तो ये सुभीते है और अमुक के कानून मे तो ये सुभीते नही है इस प्रकार की शकाएँ भी निर्मूल हैं क्योकि जो नया कानून बनेगा उसमे आज के सभी कानूनो की अच्छाइयॉ शामिल की जॉयगी। वह किसी एक धर्मशास्त्र के आधार पर न बनेगा बल्कि सभी धर्मो मे से अच्छी अच्छी बाते चुनी जॉयगी। साथ ही लोकहित का विचार किया जायगा।

आज जो किसी को अत्यधिक सुविधाएँ हैं किसी को अत्यधिक असुविधाएँ, इन दोनो को हटाकर सब को समान सुविधाएँ मिले ऐसा प्रयत्न होना चाहिये।

सन्देश नववॉ

प्रत्येक विवाह सरकार मे रजिष्टर्ड हो। हा, उसके पहिले या पीछे विवाह की विधि इच्छानुसार की जा सकती है। कानून की वे सब धाराएँ उठा देना चाहिये जो एक जाति का दूसरी जाति मे (अनुलोम या प्रतिलोम) एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदाय मे वैवाहिक सबध होने मे बाधा डालती है। किसी भी तरह का विवाह हुआ हो सब मे गोद लेने का अधिकार रहे। विधवा को भी रहे।

भाष्य--इस विषय मे कई सूचनाएँ आई है १--रजिष्ट्री कराने की आवश्यकता नही है। सरकार का जितना कम अकुश रहे उतना ही अच्छा। २--रजिष्ट्री सरकार नही, काजी या पुरोहित करे। ३--रजिष्ट्री के बाद विधि करना विडम्बना है दो मे से एक कोई भी चीज रक्खी जाय। ४--गोद का रिवाज बिलकुल उठा दिया जाय।

समाज शास्त्र मे एक कसौटी का निर्देश आता है कि जो सरकार अधिक से अधिक सुव्यवस्था के साथ कम से कम अकुश रक्खे वही सरकार अच्छी है। इसलिये विवाह शादियो के विषय मे सरकारी अकुश खटकना स्वाभाविक है। पर सरकारी अकुश और सरकारी सेवाओ का भेद ध्यान मे रखना आवश्यक है। सरकार के कुछ काम तो नियन्त्रण सबधी है और कुछ काम सहायता या सेवासबधी। शिक्षण देना असपताल खोलना, मर्दुमशुमारी करना आदि अकुश नही किन्तु सेवाएँ है। रजिष्ट्री का काम इसी श्रेणी का है। रजिष्ट्री करने का सिर्फ यही मतलब है कि समाज को याद रहे कि इन दो व्यक्तियो का विवाह हुआ है। समाज के हाथ मे यह काम

सौंप देने से भी एक तरह से काम तो चल ही जाता है परन्तु कभी कभी बडे झगडे पैदा हो जाते है। एक दल कहता है कि इन दोनो का विवाह हो गया, एक कहता है नहीं हुआ और दोनों अपने अपने गवाह पेश करते हैं। रजिष्ट्री मे ये झगडे न रहेंगे। कभी कभी जबर्दस्ती भी विवाह विधि कर दी जाती है। वर वधू दिखाये कोई जाते है और शादी किसी के साथ कर दी जाती है। बालविवाह-प्रतिबधक कानून तथा और भी ऐसे कानूनो को भग करके शादियॉ हो जाती है। रजिष्ट्री के रिवाज से ये झगडे कम हो जायगे।

रजिष्ट्री का यह मतलब नही है कि सरकार के हाथ मे विवाह का सूत्र दे दिया जाय। रजिष्ट्री का मतलब सरकार को विवाह का गवाह बना लेना है। जैसे बालक के पैदा होने और मरने की सूचना सरकार मे कर दी जाती है और सरकार उसे रजिष्टर मे लिख लेती है उसी प्रकार विवाह की सूचना भी लिख ली जायगी। हा, जन्म मरण की सूचना की अपेक्षा इस मे कुछ अधिक सतर्कता की आवश्यकता है। कोई स्वार्थवश झूठी रिपोर्ट भी कर सकता है इसलिये वर वधू को रजिष्ट्रार के सामने उपस्थित होने या रजिष्ट्रार को घर बुलाने की आवश्यता रहेगी।

काजी या पुरोहित से रजिष्ट्री कराने की कोई जरूरत नहीं। समाज मे इन की आवश्यकता ही नही है। उन लोगो को आजीविका के लिये धधा मिल जायगा यह ठीक है पर रजिष्ट्री का उद्देश मारा जायगा। नाजायज विवाहो का समर्थन कर देना इनके लिये वडा सरल है। फिर भी अगर किसी सघ को अपना रजिष्ट्रेशन आफिस रखना है तो भले ही रक्खे पर सरकारी रजिष्ट्री गवाही की दृष्टि से अनिवा

वर्तमान मे रजिष्ट्री कराने में एक है। वह यह कि जिस विवाह की रजि जाती है उसके लिये एक जुदा ही [सिविल ला] लागू होता है। हिन्दू ला लिम ला आदि की अपेक्षा उसका कुछ जुदा है। पर रजिष्ट्रेशन की यह तभी तक है जबतक कि दायभाग आदि कानून जुदे जुदे है बाद मे यह आपत्ति जायगी।

पर यदि अभी हिन्दू ला आदि अलग कानून उठाये न जा सकते हो तो भी उ पहिले रजिष्ट्री की सुविधा की जा सकती सिविल ला के अनुसार होने वाले विवाहो ही रजिष्ट्री न की जाय किन्तु किसी भी त के विवाह की रजिष्ट्री की जाय और उस यह बात लिख दी जाय कि यह विवाह कानून के अनुसार हुआ है। इस प्रकार वैवाहिक कानून की अडचन दूर हो सकती है।

रजिष्ट्रेशन के आगे पीछे विधि या उत्सव करना विडम्बना कही जा सकती हैं पर इस मे कोई विडम्बना की बात माळूम नहीं होती। जब हमारे यहा बच्चा पैदा होता है तब उसकी खबर सरकार मे कर दी जाती है पर इसीसे हमारे कार्योंकी इतिश्री नहीं हो जाती। हम उत्सव भी मनाते है और भी आवश्यक क्रियायें करते है इसी प्रकार विवाह की बात है। विवाह के कानूनी रूप के लिये रजिष्ट्रेशन है और वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारियो का अनुभव करने और समाज की भी गवाही लेने के लिये विवाहोत्सव मनाना चाहिये। जब कभी राज्यक्रान्ति आदि होने से सरकारी रजिष्टर न मिले तो समाज

की गवाही काम आयगी । इस प्रकार विवाह का रजिस्ट्रेशन जरूर हो, विशेष विधि या उत्सव स्वेच्छा पर निर्भर रहे ।

गोद का रिवाज कोई हानिकारक नहीं मालूम होता । अपना बच्चा तभी गोद दिया जाता है जब वह किसी श्रीमान् के घरमे जाता है। गोद मे जाने से बच्चे के हित की कोई हानि होने की संभावना नहीं है । नुकसान तो बच्चे के माता पिता का हो सकता है सो वह तो अपना नफा नुकसान विचार कर दे ही रहा है । इस प्रकार न तो बच्चे की हानि है न गोद देने वाले और लेनेवाले पर कोई जबर्दस्ती है ऐसी हालत मे गोद के रिवाज से अगर किसी की पुत्रैषणा शात होती है तो क्या हानि है ? वह सतान पैदा करने के लिये दूसरी शादी करना चाहे पत्नी पर अप्रसन्न रहे या उत्तराधिकारी के अभाव मे दुखी रहे इससे तो यही अच्छा है कि वह किसी बालक या युवकको गोद लेले । इस कार्य मे किसी के साथ कोई जबर्दस्ती तो होती ही नहीं कि अन्यायँ हो जाय । इस प्रकार गोद लेने की प्रथामे कोई बुराई नहीं मालूम होती ।

हा, कही कहीं पर पुरुष को गोद लेने का अधिकार है और स्त्री को नहीं है यह बात अवश्य ही अनुचित है । यह पक्षपात जाना चाहिये।

विवाह सस्था मे जो जाति या सम्प्रदाय आदि के नाम पर वधन है वह एक तरफ का अतिवाद है और अनमेल विवाहादि की जो छूट है वह दूसरी तरफ का अतिवाद है । निरतिवाद अनमेल विवाहों का और अनुचित बधनो का विरोधी है ।

सन्देश दसवॉ

व्यभिचार घृणित समझा जाय परन्तु व्यभिचारजात सन्तान घृणित न समझी जाय । समाज मे इसके अधिकार पूरे रहे ।

भाष्य--वहुत से लोगो का ऐसा भ्रम है कि व्यभिचार पाप होकर के भी क्षम्य है जब कि व्यभिचारजातता क्षम्य नहीं है । इसलिये व्यभिचारियो को तो शुद्ध करके सामाजिक अधिकार दे दिये जाते हैं पर व्यभिचारजातो को सदा के लिये अलग कर दिया जाता है । यह पूरा अधेर है । जिन स्त्री पुरुषो ने व्यभिचार किया वे ही दोषी है उनको ही दड देना चाहिये । व्यभिचार से पैदा होनेवाले बच्चे का क्या दोष है । इसलिये उसे तो धर्म, समाज, राष्ट्र के जितने अधिकार है सब मिलना चाहिये । एक निरपराधी को दड देना अन्याय है । हा, व्यभिचारजातता से उसमे बल बुद्धि सौन्दर्य सदाचार आदि मे कोई त्रुटि होती हो तो उसका फल उसे आपसे ही मिल जायगा उसके लिये दड देने की जरूरत नहीं है । पर यह भूलना न चाहिये कि व्यभिचारजातता से बल बुद्धि आदि मे कोई त्रुटि नहीं होती ।

कोई यह समझते है कि इससे व्यभिचार पर रोकथाम लगती है पर बात यह नहीं है । एक आदमी व्यभिचार से इसलिये नहीं डरता कि व्यभिचार से सन्तान पैदा होगी और उसे सामाजिक अधिकार न मिलेगे । बल्कि इसलिये डरता है कि सन्तान होने से व्यभिचार का प्रबल प्रमाण समाज के हाथ मे आजायगा इसलिये मैं सजा पाऊगा और बदनाम हो जाऊगा । इसी डर से वह भ्रूण हत्या करता है । जब हत्या करने का डर नहीं है तब सन्तान के अनधिकारी होने का

उसे क्या डर होगा। बल्कि व्यभिचारजात सन्तान अधिकारी न होने से उसका डर कम हो जाता है। जब व्यभिचारजात सन्तान सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होने लगेगी तब व्यभिचार करना कुछ कठिन ही हो जायगा।

परन्तु इससे कुटुम्ब कलह बढ़जॉयगे। पुरुष के अपराध के कारण उसकी पत्नी सन्तान आदि के साथ अन्याय होगा इसलिये साम्पत्तिक अधिकार के विषय मे कुछ नियम बनाना होगे।

१–व्यभिचार करनेवाले अगर दोनो ही अकेले हो (पतिहीन और पत्नीहीन) तो साम्पत्तिक उत्तराधिकारित्व का नियम लागू हो। और दोनो पतिपत्नी माने जाँय। अगर सधवा और सपत्नीक व्यभिचार करे तो वे अपराधी समझे जॉय और उनका सम्बन्ध तुड़ा दिया जाय।

२–वेश्याओ के विषय मे दाम्पत्य बनाने का नियम लागू न हो।

किसी का उचित अधिकार मारा न जाय इसके लिये आवश्यक उपनियम और भी बन जॉयगे। पर साधारण बात यह है कि व्यभिचार बुरा होने पर भी बेचारी व्यभिचारजात सन्तान बुरी न समझी जाय। व्यभिचार को रोकने के लिये जो दड और शिक्षण की आवश्यकता हो वह अवश्य दिया जाय।

कहा जा सकता है कि हरएक युवक और युवती को विवाहित होना अनिवार्य कर दिया जाय और जो विवाह न करे वह टैक्स दे। ऐसा होने पर व्यभिचार रुक जायगा।

परन्तु व्यभिचार तो इस अवस्था मे भी नही रुक सकता, हा, कम अवश्य हो सकता है। पर जो मनुष्य इतना पैदा न कर सकता हो कि वह पत्नी और सन्तति का पालन कर सके उसे जबर्दस्ती विवाह के लिये तैयार करना एक असफल दाम्पत्य का निर्माण करना है। इसलिये अगर टैक्स लगाना हो तो कुछ आमदनी का नियम रखना होगा कि अविवाहित कर चालीस या पचास रुपया से अधिक मासिक आमदनी वाले को लगाया जाय। फिर भी जो व्यभिचार हो उस पर यथोचित दडादि व्यवस्था की जाय। यहा एक बात और ध्यान मे रखना चाहिये कि जब तक देशमे जन सख्या बढाने की जरूरत नहीं है तब तक विवाह के लिये विवश करना ठीक नहीं मालूम होता। खैर,

व्यभिचार की छुट्टी दे देना और मनुष्य को पशु कोटि मे जाने देना एक प्रकार की अति है, और व्यभिचार रोकने के लिये व्यभिचारजात सन्तान का गला घोटना दूसरे प्रकार की अति है। निरतिवाद व्यभिचार रोकना चाहता है पर व्यभिचारजात की रक्षा करना चाहता है।

संदेश ग्यारहवाँ

एक देश दूसरे देश पर एक जाति दूसरी जाति पर एक प्रान्त दूसरे प्रान्त पर शासन न करे। भौगोलिक सीमाओ के आधार पर राष्ट्रो का निर्माण हो और शासन की स्वतन्त्रता उस देश की जनता को रहे।

भाष्य—पहिले सन्देश की अगर पूर्त्ति होजाय तो इसकी आवश्यकता बहुत कम रह जाती है। पर जब तक पहिले सन्देश की पूर्ति न हो तब तक इसकी आवश्यकता तो है ही साथ ही प्रथम सन्देश की पूर्त्ति के बाद भी है। प्रथम सन्देश से इन सीमाओ के अन्दर रोटी बेटी व्यवहार की खुलासी मिलती है परन्तु ऐसी भी परिस्थितियाँ है जब रोटी बेटी व्यवहार की खुलासी होजाने पर भी शास्य शासक का भेद बना रहता है। पहिला

सन्देश सामाजिक एकता के लिये है और यह राजनैतिक एकता तथा बराबरी के लिये है। एक दूसरे के पूरक तो है ही।

व्यक्ति व्यक्ति पर आक्रमण करता है उससे समाज मे अशान्ति पैदा होती है और नम्बर बार दोनो सताये जाते है यही बात राष्ट्रो और प्रान्त आदि के विषय मे भी है।

भारत मे जब जब किसी एक प्रान्त का उत्थान हुआ तभी उनने दूसरो को गिराने की चेष्टा की या उनपर अधिकार जमाया इससे उनका पतन हुआ और दूसरो का भी हुआ। मराठो का, राजपूतो का सब का ऐसा ही इतिहास है।

आज बगाली, महाराष्ट्री, गुजराती आदि भेदो को मुख्य बनाकर एक प्रान्त दूसरे पर वर्चस्व स्थापित करना चाहे राष्ट्रीय हित को गौण करके प्रान्तीयहितो को मुख्यता दे तो भारत का सर्वनाश हो जाये। इनमे जो भाषा और रहन सहन के भेद है वे ऐसे नहीं है जो अमिट हो। वृथाभिमान की पुष्टि के लिये राष्ट्रीयता और मनुष्यता की हत्या न करना चाहिये।

जो बात प्रान्तो के लिये है वही बात राष्ट्रो के लिये भी है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रपर आक्रमण करना चाहता है इसके लिये दोनो ही अपनी सारी ताकत शस्त्रास्त्रो के बढाने मे लगा देते है। राष्ट्र मे जनकल्याण के कार्य किनारे रह जाते है और नरसहार की तैयारी होने लगती है और कभी कभी लाखो का सहार हो जाता है। जब तक एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबाये रखना चाहेगा या दबायेगा तब तक आदमी चैन से न रह पायगा।

आदमी मे अगर थोडी भी आदमियत हो तो वह राष्ट्र प्रान्त जाति आदि के नामपर वृथाभिमान न करे। अपना स्वार्थ देखता हो तो देखे परन्तु एक कल्पित समानता के नामपर एक गिरोह के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझकर मनुष्यता का खून क्यो करे? कुटुम्ब और मनुष्य के बीचके जितने भेद है उन्हे सघर्ष का कारण क्यो बनाये?

इतनी साधारण समझदारी यदि आजावे तो जगत के राजनैतिक झगडे निर्मूल हो जावे। राष्ट्र आदि प्रबन्ध के सुभीते के लिये रह जॉय। जैसे एक ही शासन के नीचे ग्राम तहसील और जिले निर्विरोध रहते है उसी प्रकार प्रान्त और राष्ट्र भी हो जावे। इसमे सभी का कल्याण है।

अपने देश को पराधीन रखना या दूसरे देश को पराधीन करना दोनो ही अनुचित है। स्वतत्र रहो और दुनिया को स्वतत्र रक्खो यह निरतिवाद है।

सन्देश बारहवॉ

किसी व्यक्तिको अगर दूसरे देशमे जाकर बसना हो तो उसे वहा बसने का पूरा अधिकार निम्न शर्तो पर रहना चाहिये।

[क] वहा की भाषा को अपनाना होगा।

[ख] उस देश के निवासियो के साथ रोटी बेटी व्यवहार को अपनाकर सामाजिक एकता स्थापित करलेना होगी।

[ग] अपनी जुदी सस्कृतिका दावा न करना होगा और न कोई विशेषाधिकार की मॉग उपस्थित करना होगी।

[घ] बाहर से आकर बसे हुए अन्य लोगो के साथ मिलकर ऐसा कोई गुट्ट न बनाना होगा जो उस देश के निवासियो पर आक्रमणात्मक सिद्ध हो सके।

भाष्य—जिस समय वह सुवर्ण युग आ जायगा जब राष्ट्रीयता की भी सीमाऍ नष्ट हो जॉयगी तब की बात दूसरी है परन्तु जब तक ये है तक तक यह सन्देश उपयोगी है।

यहा यह बात ध्यान मे रखने की है कि जो लोग सैकडो वर्षो से जहा बसे हुए है उनको अपने घर लौटाना नही है। उनका घर तो अब वही है जहा वे सेकडो वर्षो से बसे हुए है। पर हा, अगर उनमे स कोई यह मानता हो कि जहा हम बसे हुए है वह हमारा देश नही है, हमारा देश तो वही है जहा से हमारे पूर्वज आये थे तो ऐसे आदमी को बसे हुए देश मे नागरिक अधिकार नही दिये जा सकेगे। जो आदमी जिस देश का नागरिक बनना चाहता है उसका फर्ज है कि वह उस देश को सब से अधिक प्यार करे अथवा विश्वबन्धुत्व की भावना तीव्र हो गई हो तो ससार के समस्त देशो को बराबरी की नजर स देखे। मुख्य बात यह कि जो जहा का नागरिक हो वह वहासे अधिक किसी दूसरे देश को प्यार न करे। अगर वह व्यवहार मे इस भावना को नहीं बताता है तो वह सिर्फ यात्री की तरह रह सकेगा नागरिक की तरह नही।

हा, इसमे सन्देह नही की बाहर के नये नये प्रभावो से सस्कृतियो की सुन्दरता और उपयोगिता बढती है इसलिये सस्कृतियो का बहिष्कार नही किया जा सकता पर सस्कृति के दावा की मनाई अवश्य की जा सकती है। अच्छी बात का प्रचार अच्छेपन के कारण होना चाहिये सस्कृति के नाम पर नहीं।

सस्कृति शब्द का जो मूल अर्थ है उसका तो किसी से विरोध नही है। परन्तु सस्कृति का अर्थ रहनसहन तथा और बहुत स रीतिरिवाज भी बन गया है। इन सब बातो को हम तीन श्रेणियो मे बाट सकते है। १ नैतिक २ अनैतिक ३ तटस्थ। तटस्थ की भी दो श्रेणिया होगी-

क—जिन का दूसरो से कोई सघर्ष नहीं है।

ख—जो सघर्ष पैदा करनेवाली है।

१—स्त्रियो का सन्मान करना माता पिता का आदर करना शाकाहारी होना आदि नैतिक सस्कृतियॉ है। इनके दावा करने का कोई विरोध नहीं किया जा सकता। और न किसी देश मे जाने पर इनका निषेध ही किया जा सकता है। अगर किसी जगली देश मे हम पहुँच जॉय जहा लोग मॉ बाप को मार डालते हो या बेच देते हो तो हमारा कर्तव्य इस अनैतिक सस्कृति को अपनाना न होगा।

२—इसी प्रकार अगर हमारे मे कोई उपर्युक्त अनैतिक सस्कृति हो और हम ऐसे देश मे जॉय जहा ऐसी अनैतिक सस्कृति न हो तो उस देश के नागरिक बनने के लिये हमे उस अनैतिक सस्कृति का त्याग कर देना चाहिये।

३ क—इस श्रेणी मे वेष भूषा खानपान आदि का समावेश होता है। खानपान पहिरने ओढने की मनुष्य को स्वतन्त्रता होना ही चाहिये परन्तु इस मे दो बातो का खयाल अवश्य रखना होगा कि हमारी यह स्वतन्त्रता सामूहिक हित मे आडे न आवे। मानलो किसी आदमी को शराब पीना है और उस देश के लोग शराब को स्वास्थ्यनाशक धननाशक आदि होने से बद कर देना चाहते है ऐसे समय मे सस्कृति की दुहाई देकर उस देश की प्रगति मे बाधक नहीं होना चाहिये। अगर आपको उस मे अच्छाई मालूम होती है तो आप युक्ति और अनुभव के आधार पर उसकी

अच्छाई सिद्ध करे परन्तु संस्कृति की दुहाई देकर ऐसा न करे।

वेषभूषा के विषय मे भी यही बात है। आप जैसा चाहे वेष रक्खे पर रक्खे सुविधा आराम या आदत के नाम पर। अपनी संस्कृति के जुदेपन के नाम पर नही।

३ ख--बहुत सी बाते संघर्ष पैदा करनेवाली है। मानलो एक देश मे आदमी खुले आम नंगे नहाते है। वहा के आदमी यहा के निवासी बन गये। यहा की परिस्थिति के कारण उनको नंगे नहाने से कानूनन मना किया गया और उनने अपनी संस्कृति की दुहाई देकर चिल्लाना शुरू किया तो यह ठीक नहीं है। इसी प्रकार नरबलि खुले आम पशुवध या और भी ऐसी बाते जो घृणित या पर-पीडक है उन्हे संस्कृति के नाम पर मढना ठीक नही।

भाषा लिपि आदि के विषय मे उस देश की भाषा और लिपि को अपनाना चाहिये। हा, यह बात अवश्य है कि भाषा दो चार दिन मे नहीं आती। उमर अधिक होने पर उसका सीखना--अच्छी तरह सीखना--कठिन हो जाता है इस प्रकार असमर्थता के नाम पर कोई देश की भाषा का उपयोग न कर सके तो बात दूसरी है परन्तु अगर नागरिक बनना हो तो अवश्य उसी देश की भाषा सीखना चाहिये। अपनी संस्कृति की दुहाई देकर वहा की भाषा से घृणा या असहयोग न करना चाहिये।

हा, उस देश की भाषा या लिपि मे अगर त्रुटि हो तो उसे सुधारने का प्रयत्न किया जा सकता है। अगर दो मे से किसी एक का चुनाव करना हो तो मै और तू के आधार पर चुनाव न करना चाहिये किन्तु अच्छेपन के आधार पर चुनाव करना चाहिये।

भाषा या लिपि के नाम पर अहंकार की पूजा करने मे कुछ लाभ नही है अगर हमारी भाषा या लिपि मे कुछ खराबी है तो वह हमे भी तो अडचन उपस्थित करेगी। झूठे अहंकार के कारण सैकडो वर्षो के लिये वह अडचन बनाये रखने मे कौनसी बुद्धिमानी है। जो वयस्क है उनकी बात जाने दे शायद वे नई भाषा या लिपि ग्रहण न कर सके पर जो बच्चा पैदा होता है वह तो कोरे कागज के समान है उस पर जो पहिले लिख दोगे वही लिख जायगा। उसे क्यो अहंकार का शिकार बनाया जाय। जो अच्छी लिपि या भाषा देश के लिये उपयोगी और काम चलानेवाली हो वही सिखाई जाय। एक पीढी बाद सारा संघर्ष दूर हो जायगा और कोई अडचन न रहेगी।

यहा राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि का प्रश्न भी जटिल बना हुआ है। जिस में भाषा का प्रश्न तो व्यर्थ सा है। जिसे हम हिन्दी कहते है जिस का दूसरा नाम खडी बोली है उसमे हिन्दुओ की अपेक्षा मुसलमानो का हाथ बहुत है। बल्कि गावो मे तो उसे अभी भी मुसलमानी भाषा कहते हैं। बुंदेलखंड के गावो मे जब कोई शुद्ध हिन्दी या खडी बोली बोलता है तब लोग यह कह कर निंदा करते है कि अब तू तुडकी--तुर्की-मुसलमानी सीख गया। पर वही तुडकी आमतौर पर लिखी जाती है। उस तुडकी--शुद्ध हिंदी-खडीबोली मे भारत के बाहर के बहुत से शब्द मिलकर आम लोगो के पास पहुँच गये हैं। उनको निकालने की जरूरत नहीं है बल्कि और भी जो नये शब्द जरूरी हो उनको अपना लेने की जरूरत है। परन्तु जान बूझकर संस्कृत या अरबी फारसी के कठिन शब्द ठूसना

अनुचित है। खैर, हिन्दी उर्दू का व्याकरण एक होने से भाषा की चिन्ता नहीं है साधारण जनता उसे आप ही ठीक कर लेगी। रहा लिपि का प्रश्न। सो भारत के बाहर की लिपि को भारत मे प्रचलित होने का नैतिक हक नहीं है। फिरभी अच्छाई की दृष्टि से विचार किया जा सकता है। सो लिखना पढना और प्रेस तीनो दृष्टियो से उर्दू लिपि ठीक नही है। रोमन लिपि प्रेस की दृष्टि से ठीक है पर पढने की दृष्टिसे उस मे भी काफी खराबी है। और लिपि मे शुद्ध पढना ही सब से महत्त्व की बात है। नागरी आदि लिपियो मे शुद्ध पढ़े जाने का गुण असाधारण है। थोडी सी त्रुटि है जो सरलता से दूर की जा सकती है पर प्रेस की दृष्टि से रोमन की अपेक्षा खराब है। इसलिये इस दृष्टि से इसमे काफी सुधार की जरूरत है। अथवा कोई ऐसी लिपि बनाना चाहिये जो सर्व-गुणसम्पन्न हो। इस विषय मे सस्कृति का प्रश्न व्यर्थ है। यह तो कुरूढि–पूजा है। हमे नये पुराने या अपने पराये का नही किन्तु अच्छाई का पुजारी बनना चाहिये।

खैर, नागरिकता का मतलब है कि उस देश मे अपने को मिला देना। अहंकार आदि को राष्ट्र की वेदी पर चढा देना। बाहर का आया हुआ आदमी अगर नागरिक तो बनना चाहता है पर उस देश को अपनाना नही चाहता तो उस देश में बसने का उसे नैतिक हक नही है।

जैसे वर्तमान मे अग्रेज लोग यहा बसे हुए है और नागरिक अधिकार भी उन्हे मिले है कुछ कुछ विशेषाधिकार भी पाये हुए है और कुछ कानूनी सुविधाएँ भी है परन्तु यह सब अन्याय है। यद्यपि एक देश का दूसरे देश पर शासक होना ही अन्याय है परन्तु यह एक दूसरे तरह का अन्याय है। कोई अंग्रेज सरकारी नौकर बन कर यहा आता है तो आये, नौकरी करके चला जावे परन्तु यहा बसने पर उसे या व्यापारी अंग्रेजों को नागरिकता के अधिकार तबतक नहीं मिलना चाहिये जबतक वे इस देश को मातृभूमि समझकर प्यार न करने लगे और इस देश को उन्नत स्वाधीन और सुखी बनाने का प्रयत्न न करे।

मुसलमानो के विषय मे यह प्रश्न खडा ही नहीं होता। पहिली बात तो यह है कि ये मुस-लमान बाहर से आये हुए नहीं हैं। यही के निवासी है। धर्म-परिवर्तन कर लेने से नागरि-कता के अधिकार नही मारे जा सकते। थोडे बहुत जो मुसलमान बाहर से आये थे उनके वशजो मे शायद ही ऐसा कोई हो जिस मे मातृ-पक्ष द्वारा हिन्दू रक्त न बहता हो। इस प्रकार सैकडो वर्षो के निवास से वैवाहिक सम्बन्ध या रक्त-मिश्रण से मुसलमान लोग हिन्दुस्थानी ही है। हा, अगर कोई मुसलमान अपने को हिन्दु-स्थानी नही कहना चाहता भारतमाता या मादरे हिन्द कहने से उसे चिढ है वह अपने को अभी भी अरब तुर्कस्थान आदि का नागरिक मानता है तो यह उसकी मर्जी है। माने, पर ऐसी अवस्थामे नागरिकता के अधिकार नहीं दिये जा सकते।

एक देशके आदमी दूसरे देश मे बस ही न सके, यह एक अतिवाद है, और दूसरे देश मे बसकर वहा अपनी राष्ट्रीयता को समर्पण न करना वहा के निवासियो मे फूट का कारण बनना दूसरा अतिवाद है। निरतिवाद दोनो का निषेध करके उचित रूप मे बसने का मार्ग बताता है।

सन्देश तेरहवॉ

राष्ट्रीयता का समर्थन वहीं तक होना चाहिये जहा तक वह दूसरे राष्ट्रो पर आक्रमणात्मक न हो।

भाष्य—जो देश राष्ट्रीयता की मंजिल तक ही अभी पूरी तरह नहीं पहुँचे है उन्हे तो राष्ट्रीयता अपना ध्येय बनाना चाहिये। जैसे भारत, चीन आदि देश है। परन्तु इटली, जापान, इग्लेण्ड आदि राष्ट्रो की राष्ट्रीयता आक्रमणात्मक हो गई है। वह मनुष्य जाति के लिये अभिशाप है। इस शाप और पाप के कारण मनुष्य जाति को सैकडो वर्षो तक चैन न मिलेगी। आज एक राष्ट्र सताया जाता है कल वही बदला लेकर सतानेवाले को सताता है इस प्रकार अविश्वास और अशान्ति का राज्य छाया हुआ है। जनशक्ति और धनशक्ति मनुष्य के सहार मे लग रही है।

अगर किसी देश की जनसख्या बढ रही है तो किसी उपाय से सतति-नियमन करना चाहिये अगर वह न हो सकता हो तो बारहवे सन्देश के नियमानुसार दूसरे देशो मे-जहा बसने की गुजायश हो—बस जाना चाहिये। पर वहा बसने के लिये उन देशो पर आक्रमण कर बैठना, उन देशो को गुलाम बनाना, वहा के नागरिको की सम्पत्ति छीन कर अपने देशवालो को दे देना अत्याचार और बर्बरता है। यह इस बात का दुखद प्रमाण है कि सामूहिक रूप मे भी मनुष्य अभी जानवर है। यह जानवरपन जाना चाहिये।

सन्देश चौदहवॉ

ऐसे राष्ट्रो का जो किसी दूसरे राष्ट्रो को पराधीन नहीं बनाना चाहते न बनाये हुए हैं—एक राष्ट्रसघ हो। जिसमे जन-सख्या के अनुसार प्रतिनिधि लिये जावे। ये राष्ट्र आपस मे आक्रमण न करे। झगडा होनेपर राष्ट्रसघ के न्यायालय से न्याय करावे। अगर बाहर का कोई राष्ट्र राष्ट्रसघ के किसी राष्ट्रपर आक्रमण करे तो सब मिलकर उसका बचाव करे। इस प्रकार धीरे धीरे दुनिया के समस्त राष्ट्रो मे सुलह शान्ति कायम की जाय।

भाष्य—वर्तमान मे जो यूरप मे राष्ट्रसघ है वह तोड देना चाहिये। उसने कमजोर राष्ट्रो को धोखा देकर गुलाम बनाने मे मदद ही पहुँचाई है। जैसा कि एबीसीनिया के मामले मे हुआ और चीन के विषय मे भी हुआ। जब तक राष्ट्रसघ का कोई एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रपर सवार होगा तब तक राष्ट्रसघ एक नपुसक सस्था ही रहेगा। उसके न होने से एक लाभ यह होगा कि निर्बल राष्ट्र उसके भरोसे ठगे न जॉयगे। भारत सरीखे गरीब देशको अपनी तिजोरी मे से रुपया देकर इस राष्ट्रसघ सरीखी विश्वासघाती सस्थाको पोषण देना ठीक नही। इसलिये भारत को उससे अलग हो जाना चाहिये। भले ही साम्राज्यवादी देश उसको बनाये रक्खे। यदि भारत सरकार राष्ट्रसघ से सम्बन्ध-विच्छेद न करे तो कांग्रेस सरीखी सस्थाको सम्बन्ध-विच्छेद घोषित कर देना चाहिये।

राष्ट्रसघ मे जनसख्या के अनुसार प्रतिनिधि इस तरह हो।

५ करोड तक	१	प्रतिनिधि
१५ करोड तक	२	,,
३० करोड तक	३	,,
५० करोड तक	४	,,
५० करोड के उपर	५	,,

पाच से अधिक प्रतिनिधि किसी राष्ट्र के न हो। जिन देशो मे प्रजातन्त्र सरकारे है उन देशो मे सरकार ही प्रतिनिधि भेजे। जहा सरकार प्रजानुमोदित नहीं हैं वहा की सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय

सस्था प्रतिनिधि भेजे। जो राष्ट्र साम्राज्यवाद की नीति के विरुद्ध हैं उन सबको यह राष्ट्रसघ कायम करना चाहिये। रूस, चीन, भारत, मिश्र, आयरलेड, अफगानिस्तान, स्विट्जरलेड, फारस आदि देश मिलकर इस राष्ट्रसघ की नीव डाले। ये राष्ट्र आपस मे स्थायी सन्धि करले। एक दूसरे को पूरी मदद करे। राष्ट्रसंघ के सदस्य मानो भाई भाई है इस तरह व्यवहार करे। इस राष्ट्रसघ की नीतिको जो अपनाते जॉय उन्हे राष्ट्रसघ मे मिलाते जाना चाहिये। इस प्रकार यह एक महान शक्ति हो जायगी। और धीरे धीरे साम्राज्यवाद का नाम सिर्फ इतिहास के पन्नो मे लिखा रह जायगा।

राष्ट्रसघ के न्यायालय के न्यायाधीश वे लोग ही बनाये जॉय जो राष्ट्रीयता के पक्षपात से परे हो गये हो। जो न्याय और सत्य के पुजारी हो। विश्वशान्ति जिनके जीवन का ध्येय हो।

राष्ट्रसघ की जब यह योजना सफल हो जाय तब राष्ट्रसघ द्वारा एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाई जाय जो सरल से सरल हो और अधिक से अधिक निर्दोष हो इसी भाषा मे राष्ट्रसघ का काम चले। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय लिपि की समस्या भी हल करलीजाय।

निरतिवाद प्रबन्ध की सुविधा के लिये राष्ट्रो के अस्तित्व को स्वीकार करता है। वह उन्हे नष्ट नहीं करना चाहता न उनमे सघर्ष चाहता है।

सन्देश पन्द्रहवॉ

शासन कार्य के प्रत्येक कर्मचारी को नि.पक्ष होना चाहिये। नौकरी पर नियुक्त होने के पहिले उसे इस बात की शपथ लेनी होगी कि मै शासन कार्य मे किसी भी जाति सम्प्रदाय या व्यक्ति का पक्षपात न करूगा और न ऐसे कार्यों मे भाग लूंगा जो साम्प्रदायिक या जातीय भाव को बढाने वाले हो न ऐसे विचार किसी तरह प्रगट करूगा। सभी धर्मों का आदर करूगा और सदा न्याय और सत्य का पक्ष लूगा।

भाष्य--शासन या न्याय के कार्य मे जो मनुष्य अपने जातीय या साम्प्रदायिक स्वार्थ को नहीं भूलता वह शुद्ध न्याय और निर्दोष शासन नही कर सकता खास अवसर पर वह अवश्य धोखा दे जायगा।

दूसरी बात यह है राष्ट्र का यह ध्येय होना चाहिये कि उसके भीतर के जातीयता प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता के भेद नष्ट हो। विचार आचार की स्वतन्त्रता रहे परन्तु उनके नामपर दलबन्दी न हो। सर्व साधारण प्रजा को अगर इसके लिये बाध्य न किया जा सके तो कम से कम उन लोगो को तो बाध्य होना ही चाहिये जो शासक बनते है और जो राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति से नि·पक्ष व्यवहार करने के लिये बाध्य है।

इन शासको के भीतर हिन्दू मुसलमान, ब्राह्मण शूद्र, बगाली गुजराती आदि का कोई भेद न होना चाहिये। वे धर्म के विषय मे स्वतत्र विचारक और समभावी, जातिके विषय मे पूरे राष्ट्रीय होना चाहिये। जो लोग इतना पक्षपात नहीं छोड सकते उन्हे किसी भी सरकारी नौकरी मे न लिया जाय।

आज कई लाख आदमी सरकारी नौकरी मे है। ये सब जातिपॉति के बधन से रहित पूर्ण नि पक्ष और समभावी हो तो इन लाखो आदमियो का एक राष्ट्रीय समाज ऐसा बन जावे जो राष्ट्र मे फैली हुई सकुचितताओ को नष्ट करने मे पथ-प्रदर्शक हो। इनके सम्पर्क से और भी

इनके लाखो कुटुबी इसी तरह के उदार बन जॉयगे ।

'हमारी जाति मे से इतने अनुपात मे नौकरियॉ मिलना चाहिये' आदि मॉगे और झगडे इस से शान्त हो जॉयगे । क्योकि जो आदमी सरकारी नौकरी मे जायगा वह तो राष्ट्रीय जाति के सिवाय और किसी जाति का न रह जायगा । तब जातिवाले अपना आदमी गुमाने को यह मॉग ही पेश न करेगे । और करे भी तो इसमे दूसरो का इतराज कम हो जायगा ।

भारतवर्ष मे नौकरी पर रखते समय प्रत्येक नौकर से यह प्रतिज्ञाएँ ले लेना चाहिये ।

१—मै आज से अपने को हिन्दू मुसलमान आदि न मानूगा न ऐसी सस्थाओ का सदस्य रहूगा जो साम्प्रदायिक या जातीय हो ।

२—मै खानपान मे तथा विवाह मे जातिभेद का विचार न करूगा अपनी अनुकूलता का ही विचार करूगा ।

३—नौकरी के प्रत्येक कार्य मे निःपक्षता से व्यवहार करूगा । किसीसे लॉच रिश्वत आदि न लूगा ।

४—साम्प्रदायिक या जातीय मामलो मे बिलकुल निःपक्ष रहूगा और साम्प्रदायिक या जातीय कटुता बढाने का कोई कार्य न करूगा ।

५—सम्प्रदाय और जाति के नामपर मै कोई मॉग पेश न करूगा ।

६—मैं जनहित और न्याय को ही सब से बडा शास्त्र मानूगा । इनके विरोध मे किसी शास्त्र को न रक्खूगा ।

नौकरी पर रखते समय इस बात की जॉच खास तौर पर करली जाय कि ये प्रतिज्ञाएँ वास्तविक है या केवल नौकरी के लिये है । इसके लिये उम्मेदवार के पहिले चरित्र का विचार किया जाय ।

यह कहा जा सकता है कि इस तरह नौकरी के लिये किसी के धर्म पर या विचारो पर हस्तक्षेप करना तो मनुष्यको गुलाम बनाना है ।

सो नौकरी मे आशिक गुलामी तो है ही । आज भी अमुक तरह के विचारो का बधन है तब उदारता का बधन क्या बुरा है ? दूसरी बात यह है कि जो वस्तु कल्याणकारी है उसे बधन नही कह सकते । प्रेम का बन्धन, कर्तव्य का बधन, ईमान का बधन आदि बधन या गुलामी नही है । मनुष्य को सकुचित वातावरण मे लादेना बधन नही है बल्कि बधन का नाश है ।

तीसरी बात यह है कि साम्प्रदायिक और जातीय कट्टरता छीनने से धार्मिक भावनाएँ नहीं छिनती । अपनी रुचि के अनुसार पुस्तक पढने, पूजा आदि करने की मनाई नही है । स्वतन्त्र विचारक बनने की मनाई नही है । मनाई सिर्फ इस बात की है कि धर्म और जाति की दुहाई देकर राष्ट्र मे सघर्ष पैदा न किया जाय ।

आजकल अधिकाश सरकारी नौकरो की काई जाति या धर्म नहीं होता । भरपूर पैसा मिलता है चैन से गुजरती है न खुदा याद आता है न ईश्वर, न कुरान न पुरान, गरीब दुनिया की तो याद ही क्या आयगी । पर ये लोग अपनी महत्त्वाकांक्षाओ के कारण अपने स्वार्थ का समर्थन कराने के लिये जाति और मजहब का सहारा लेकर भोले लोगो मे विष फैलाते है । अपना उल्लू सीधा करते है और जनता मे जगलीपन भरते है इसलिये इस बात की जरूरत है कि सरकारी आदमी जाति और सम्प्रदाय से परे हो और सदा

के लिये परे हो जिससे राष्ट्र मे राष्ट्रीयता स्थायी हो जाय।

सन्देश सोलहवाँ

धारासभा जिला बोर्ड तहसील बोर्ड म्युन्युसपलिटी आदि सस्थाओ मे ऐसे ही सदस्य जा सके जो अपने को किसी जाति या सम्प्रदाय का प्रतिनिधि न मानते हो। जो सर्व-धर्म-समभावी और सर्वजातिसमभावी हो। सेवा करने के लिये जिनके पास काफी समय हो और जो उन सस्थाओ के कामो मे कुछ समझदारी रखते हो। तथा निस्वार्थ वृत्ति से काम करने को तैयार हो।

भाष्य-ये सस्थाएँ किसी एक जाति के लिये नहीं हैं इसलिये इनमे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व-या साम्प्रदायिक निर्वाचन न होना चाहिये साथ ही प्रत्येक सदस्य समभावी ईमानदार और जिम्मेदार होना चाहिये। धारासभाओ के लिये तो पहिले लिख आया हू यहा म्युन्युसपलिटी और डिस्टिक्ट बोर्ड आदि के विषय मे विचार करना है। वास्तव मे इनकी बडी दुर्दशा है। इनमे फीसदी पचहत्तर के करीब स्वार्थी लोग भर जाते है और चुनाव मे तो कहीं कही गुडाशाही तक मच जाती है। इन चुनावो ने हर एक शहर और गावो मे दलबन्दी कर दी है। कहा तो यह जाता है कि हम सेवा के लिये जाते है, पर सेवा के लिये इतनी बेचैनी क्यो? किसी बीमार की सेवा करने के लिये तो इतनी बेचैनी नहीं होती किसी भले आदमी को भूखा देख कर इतनी बेचैनी नहीं होती फिर वहा इतनी बेचैनी क्यो? तुममे योग्यता है भावना है लोग चाहते है तो बुलाने पर अवश्य जाओ। पर सेवा करने के लिये 'सौ सौ धक्के खाय तमाशा घुसके देखेगे' वाली कहावत क्यो चरितार्थ करते हो?

चुनाव का जो ढग है वह भी ऐसा है कि केवल सेवाभाव से प्रेरित होकर कोई वहा न जाय। कोई आदमी अपने समय शक्ति विद्वत्ता आदि का लाभ जनता को मुफ्त देना चाहता है और उससे कहा जाता है कि सेवा करने की उम्मेदवारी के लिये पचास या पाँचसौ रुपये डिपाजिट रक्खो। अच्छी से अच्छी अफसरी की नौकरी पाने के लिये इस प्रकार डिपाजिट कोई नहीं रखता फिर निस्वार्थ सेवा के लिये इस प्रकार अपमान कौन सहन करेगा? जो लोग निस्वार्थ सेवा के कार्य मे दस बीस रुपया देते भी हिचकिचाते है वे हजारो रुपये चुनाव की लडाई मे फूँक देते है पचास पाँचसो डिपाजिट रखते है घर घर जाकर वोटरो के हाथ जोडते है उन्हे मोटरमे बिठाकर लेजाते है इतनी दीनता और अपमान कोई निस्वार्थ सेवा के लिये कैसे सहन कर सकता है? और फिर वे लोग जो दूसरी जगह दो चार रुपयो के लिये भी मुँह ताकते है। इसलिये सच्चे सेवको को खोजने के लिये निम्नलिखित सूचनाएँ उपयोगी होगीं।

१ प्रान्तीय धारासभा, बडी धारासभा, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड म्युन्युसपालिटी आदि की सघटनाओ और उनके कार्य का परिचय देनेवाला एक पाठ्यक्रम तैयार किया जाय उसकी परीक्षा हरएक नागरिक दे सके। इन परीक्षापास नागरिको मे से ही कोई चुनाव के लिये खडा किया जाय।

बडे बडे नेताओ और विद्वानो को विना परीक्षा दिये हुए ही सरकार प्रमाण पत्र दे दे।

२-चुनाव के लिये कोई आदमी स्वय खडा न हो किन्तु वोटरो की सख्या का करीब दसवाँ भाग जिसको चुनने के लिये अर्जी दे वही आदमी चुनाव के लिये खडा समझा जाय। जहा

वोटरो की सख्या बहुत अधिक हो वहा दसवे भाग के बदले पचास या सौ आदमियो के हस्ताक्षर पर कोई आदमी चुनाव के लिये खडा किया जाय ।

३—पोलिंग स्टेशन का सारा प्रबंध सरकार करे । वोटरो को मिठाई खिलाना शरबत पिलाना आदि लॉच के काम बन्द रहे ।

४—जो आदमी चुनाव के लिये खडा किया जाय वह आदमी पहिले घोषित कर दे कि मै अमुक सेवा कार्य के लिये इतना समय दूगा । तीन चतुर्थाश बैठकों मे उसे उपस्थित रहना अनिवार्य समझा जाय ।

५—डिपाझिट लेना बद रहे । हरएक आदमी खडा न हो जाय इसके लिये नबर दो की सूचना काफी है ।

६—वोटरो को ले जाने के लिये सवारी आदि का प्रबन्ध करना घृणित समझा जाय । जनता को समझ लेना चाहिये कि जो आदमी सवारी आदि का प्रबन्ध जितना अधिक करे वह उतना ही अयोग्य और स्वार्थी है । चुनाव के समय की चापलूसी मे आकर किसी को वोट न देना चाहिये ।

७—वोट माँगने के लिये अगर कोई उम्मेदवार वोटर के घर जाता है या अपना दूत भेजता है तो यह उसकी तुच्छता अयोग्यता और स्वार्थीपन समझा जाय । अधिक से अधिक इतना ही होना चाहिये कि वोटर के पास अपना लिखित या छपा हुआ सन्देश भेजदे ।

८—उम्मेदवार का सन्देश सुनाने के लिये सभाएँ हो सकती है और उम्मेदवार से क्रम से शान्तिपूर्वक प्रश्न पूछे जा सकते है । पर गाली गलौज या मारपीट कदापि न होना चाहिये । अगर उम्मेदवार प्रश्नो का उत्तर न देना चाहे तो प्रश्न पूछना बद कर देना चाहिये । इसीसे उम्मेदवार की कमजोरी मालूम हो जायगी । होहल्ला मचाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

९—प्रभात फेरी आदि ऐसे कार्य बद रखना चाहिये जो चुनाव के क्षेत्र मे युद्ध का वातावरण पैदा करते है और कहीं कहीं फौजदारियॉ भी हो जाती है । इसी प्रकार चुनाव के बाद विजयोत्सव के समान प्रदर्शन भी न करना चाहिये । जो आदमी चुनाव मे आ जाते हैं उनके सन्मान मे पार्टियॉ देना उन्हे मानपत्र देना आदि भी अनुचित हैं । अभी तो वह सेवा के लिये चुना गया है । सेवा कैसी करता है यह देखकर उसे पीछे बधाई देना चाहिये जब उसका सेवाकाल पूरा हो जाय । सेवा करने मे अगर वह तीन वर्ष या पॉच वर्ष उत्तीर्ण हो तो उसे बधाई देना चाहिये नही तो नहीं । विद्यार्थी जब परीक्षामे बैठता है तब परीक्षा मे बैठने का उत्सव नहीं मनाया जाता है पास होने का मनाया जाता है । सेवाके लिये चुना जाना तो परीक्षा मे बैठना है । पास फेल तो तब मालूम होगा जब वह कुछ कर दिखायगा । तभी बधाई देने न देने का विचार करना चाहिये । अभी जो बधाई दी जाती है उसका अर्थ यह होता है कि दो उम्मेदवारो का युद्ध ही कर्तव्य है और इसी जीत मे कर्त्तव्य की इतिश्री है । यह तुच्छता तो है ही, साथ ही स्थायी वैर को निमत्रण देना है । यह तुच्छता मन मे आ सकती है पर वह मन मे ही रहे । यदि उसका प्रदर्शन किया जाय और उसमे किसी तरह की शर्म न मानी जाय तो तुच्छता और स्वार्थ पर नैतिकता की छाप लगाना है ।

चुनाव के वर्तमान रूप ने धन को ही योग्यता का मापदंड बना दिया है। जो कुछ सेवा कर सकते है जिन के त्यागमय जीवन का जनता लाभ उठा सकती है उनकी सेवा से जनता वंचित रहती हैं और जिनने सेवा की वर्णमाला भी नहीं पढी है वे धन के बल पर सेवा के लिये सवार हो जाते है। यद्यपि सर्वथा यह बात नहीं है कि धनवान ही सेवा के लिये चुने जाते हो और गरीब एक भी न आता हो पर ये दोनो बाते अपवाद रूप मे होती है अधिकांश मे धन बाजी मार ले जाता है। इस अन्धेर को जितना रोका जा सकता हो रोकना चाहिये। सच्चे सेवक ही आना चाहिये चाहे वे गरीब हो चाहे अमीर।

निरतिवाद म्युनिसपल आदि मे लोकतन्त्र चाहता है पर अयोग्य और स्वार्थ-साधुओ से इन सस्थाओ को बचाये रखना चाहता है।

पन्द्रहवे और सोलहवे सन्देश के मान्य होने पर साम्प्रदायिक और जातीय छुट्टियो का झगड़ा भी तय हो जायगा। सप्ताह मे एक रविवार की छुट्टी रहे। गर्मी की छुट्टियाँ रहे। और भी कुछ ऋतु-सम्बन्धी छुट्टियाँ रहे। स्वतन्त्रता दिवस आदि की भी छुट्टी रहे। धार्मिक और सामाजिक त्यौहारो की आम छुट्टियाँ बद रहे। जिसमे किसी को यह कहने की गुजायश न रहे कि हमारे सम्प्रदाय की छुट्टियाँ नहीं है या कम है तुम्हारे की अधिक हैं। हा, इच्छानुसार उत्सव मनाने के लिये हरएक नौकर को दस दिन की छुट्टी मिले। आजकल यहा इस विषय मे काफी अन्याय हो रहा है।

सन्देश सत्रहवाँ

ऐसी सस्थाएँ अमान्य करदी जाँय जो साम्प्रदायिक या जातीय कट्टरता का पाठ पढाता है।

भाष्य--अमुक धर्म या अमुक दर्शन को पढने पढाने की मनाई नही है। निःपक्ष रीतिसे उनका पठन पाठन चलना चाहिये। परन्तु ऐसी साम्प्रदायिक सस्थाएँ भी है जहा अपने धर्म और अपने समाज की सर्वोत्तमता का और दूसरे धर्मों और समाजो की निंदा का विष दिनरात भरा जाता है। इनसे राष्ट्र की और मनुष्यता की बडी हानि होती हैं। मैं स्वय ऐसी शालाओ का शिकार हू। बीस वर्ष पहिले जैसी मेरी मनोवृत्ति थी वैसी मनोवृत्ति को रखकर मनुष्य सत्य और प्रेम से कोसो दूर रहेगा। न जाने मुझ मे स्वतन्त्र विचारणा का बीज कहा से घुसा पडा था कि उसने इस पापको दूर कर दिया परन्तु मेरे ढेरो साथी उसके शिकार अभी तक बने हुए है। खैर, अल्पसख्यक समाजे ऐसा विष फैलाकर भी अपनी अशक्ति के कारण राष्ट्रव्यापी क्षोभ पैदा नहीं कर पातीं परन्तु जरा बडी सख्यावाली समाजे इस प्रकार की कट्टरता के शिक्षण से राष्ट्रमे ऐसा विष घोलती है कि जिन शिक्षितो से शान्ति प्रेम और सभ्यता की आशा करना चाहिये वे अशान्ति द्वेष और असभ्यता की मूर्त्ति बनजाते हैं। साधारण लोग जिस समस्या को सरलता से सुलझा सकते है उसे वे पढे लिखे लोग चिरकाल के लिये उलझा देते है। इसलिये ऐसी सस्थाएँ न हो यह सब से अच्छा। परन्तु अगर हो ही तो वे सरकार-मान्य न समझी जाँय एक सस्थाको जो सुविधाएँ मिलती है वे इन्हे न मिले। जैसे उनकी जमीन मकान आदिपर टेक्स न लगना, कभी कन्सेशन टिकिट मिलजाना, वहाकी परीक्षाको प्रमाण मानलेना, आर्थिक सहायता आदि सुविधाये न मिले।

धर्म और दर्शन के शिक्षण को बन्द करने की जरूरत नही है।

सन्देश अठारहवॉ

अर्थोपार्जन की यथाशक्य स्वतन्त्रता हरएक मनुष्य को रहे। पर इस क्षेत्रमे जो आदमी किसी तरह पिछड जाय उसे भरपेट रोटी देने के लिये काम देना सरकार का काम है।

भाष्य—निरतिवाद की आर्थिक रूप रेखा विस्तार से दीगई है इसलिये अब विशेष भाष्य लिखने की जरूरत नहीं है।

संदेश उन्नीसवॉ

सिर्फ भिक्षा मॉगने के लिये कोई साधुका वेष न लेपावे। रजिष्टर्ड साधुओ के सिवाय कोई भिक्षा मॉगे तो वह दंडित हो तथा बेकारशाला मे भेज दिया जाय। जो साधु बनकर भिक्षा मॉगना चाहे वह अपना नाम रजिष्टर्ड करावे जिस मे निम्नलिखित बातो का खुलासा हो।

[१] नाम तथा वंशादि परिचय।

[२] बौद्धिक तथा अन्य योग्यता।

[३] समाज की और अपनी किस सेवा के लिये साधुपद स्वीकार किया।

[४] आचार के नियम।

[५] वेष की साधारण रूप रेखा।

भाष्य-साधु, साधु सस्थाकी सदस्यता, और साधुवेष इनतीनो मे अन्तर है। साधु तो वह है जो सदाचारी और निस्वार्थ समाजसेवक है। जो समाज को अधिक से अधिक देकर कम से कम लेने की चेष्टा करता है। ऐसा साधु किसी सस्था का सदस्य हो भी सकता है नहीं भी हो सकता, वह साधु वेष मे या किसी दूसरे वेष मे भी रह सकता है, वह गृहस्थ भी हो सकता है और सन्यासी भी हो सकता है। सारा संसार अगर ऐसा साधु हो जाय तो स्वर्ग की नाना कल्पनाऍ भी फीकी पड जॉय। साधु-सस्थाका का सदस्य सारा ससार नही बन सकता और न साधु-सस्था का सदस्य हो जाने से साधुताका निश्चय किया जा सकता है। क्योकि सस्थाओ मे असाधु भी घुस जाते है। साधु सस्था के अमुक नियमो मे बँधा रहता है। संस्था चाहे तो अमुक वेषको रक्खेगी नहीं तो नहीं भी रक्खेगी।

साधु-वेष और भी बाहर की चीज है। बहुत सी जगह तो यह भिक्षा मॉगने का साधन बना हुआ है। साधुवेष की उच्छृखलता के कारण साधु सस्थाकी और साधुता की दुर्गति हो रही है। देश मे भिखारियो का होना कलक की बात है और इसके लिये साधु वेष की दुर्गति होना शर्म की भी बात है। भीख मॉगना बिलकुल बन्द होना चाहिये और कदाचित बन्द न हो सके तो उसके लिये साधु वेष का उपयोग कदापि न होना चाहिये।

परन्तु इसकी पूर्त्ति मे अतिवाद आडे आता है। अगर भिक्षा बिलकुल बन्द कर दी जाती है तो सच्चे साधुओ के मार्ग मे बाधा आती है अगर बिलकुल छूट रहती है तो साधु वेषधारी लाखो भिखारियो के बोझ से देश दबा जा रहा है इस प्रकार दोनो तरफ अतिवाद है।

यद्यपि ऐसी भी साधु सस्था हो सकती है जिस के सदस्य भिक्षा न मॉगे परन्तु भिक्षुक साधुओ की भी जरूरत है भोजन के लिये कुछ अर्थोपार्जन सम्बन्धी काम करना और उसके निर्माण के लिये भी काम करना, इन दोनो से साधु को ऐसे लोगो के अकुशमे आ जाना पडता है जिन को सुधारने के लिये साधु को डटना है। परन्तु इससे साधु मे बहुत कुछ दब्बूपन या दीनता आ जाती है। फिर घरू कामो मे उस

की शक्ति लग जाती है वह रुपयो की थैली के बिना परिव्राजक जीवन नहीं बिता सकता इस लिये अगर कुछ विशेष योग्यता वाले प्रचारक या जनसेवक भिक्षा से गुजर कर लेते है तो इस मे समाज की कोई हानि नही है। इसलिये साधुओ को भिक्षा की सर्वथा मनाई तो नहीं करना चाहिये।

परन्तु साधुवेष की ओट मे जो आलस्य दुराचार आदि का ताडव होता है उसे बद करने के लिये साधुओ की रजिष्ट्री होना जरूरी है। रजिष्ट्री का मतलब उन्हे सरकार का गुलाम बना देना नहीं है पर उनको व्यवस्थित बना देना है और उनकी उच्छृखलता को रोकना है।

हा, उसकी रजिष्ट्री सीधी नहीं किन्तु कुछ परोक्ष ढग से की जायगी। अर्थात् सामाजिक सस्थाओ के हाथ मे उनका रजिष्ट्रेशन रहेगा और उन समाजो ने जिस शर्त पर किसी को साधु बनने की अनुमति दी होगी उन शर्तो का भग करने पर अगर कोई उसी समाज का आदमी सरकार मे अर्जी करे तो सरकार उस साधु के भिक्षा मागने के हकपर हस्तक्षेप कर सकेगी।

आज तो एक आदमी इस प्रतिज्ञा पर साधु बनता है कि मै एक फूटी कौडी भी अपने पास न रक्खूगा, फिर भी लोगो से ठगकर हजारो रुपये जोडता है और धनवान बनजाता है वह अपराध डकेती से कुछ कम नही है।

कहा जा सकता है कि उस समाज या सस्था को ही उन साधुवेषियो को ठिकाने लाना चाहिये सरकार हस्तक्षेप क्यो करे ?

पर बात यह है कि सारा समाज इन लोगो की डकेती को नहीं समझ सकता वह तो भोला है इस विषय मे नाबालिग है। जो थोडे बहुत आदमी प्रयत्न करते है उनके हाथ मे सत्ता न होने से कुछ नहीं कर पाते। कभी कभी तो सरकार उनके मार्ग मे आडे आ जाती है। मानलो एक आदमी बिलकुल निष्परिग्रह साधु बना। पर लोगो को धोखा दे कर उनके भोलेपन का उपयोग करके उसने रुपये इकठे कर लिये। समाज के कुछ लोगो ने उसका भडाफोड कर दिया और रुपये छीन लिये, पर सरकार उसके रुपये इस लिये वापिस दिला देती है कि सरकार की दृष्टि मे उसे रुपये रखने का अधिकार है। इस प्रकार सरकार को कानून की गुलामी के कारण न्याय और जनहित की अवहेलना करना पडती है।

कोई साधुवेषी पैसा न रक्खे यह बात नहीं है पर एक आदमी यह घोषित करके कि मै एक कौडी भी नहीं रखता—भिक्षा मॉगने का अधिकार प्राप्त करता है और बदमाशी करके लोगो को ठगता है पैसे के बलपर वह स्वार्थी लोगो का गुट बना लेता है, तो इस ठडी डकैती पर अकुश लगाने मे सहायता करना सरकार का कर्तव्य होना चाहिये।

अगर कोई व्यक्ति स्त्री न होकर भी स्त्रीवेष धारण करके जन समाज को ठगले जाय स्त्रियोचित सुविधाएँ प्राप्त करले तो सरकार उसे दड देगी, इसी प्रकार कोई पुलिस का वेष बना कर अगर लोगो को ठगले तो दड पायगा तब साधुवेष धारण करके अगर कोई जनता को ठगता है तो वह भी दड क्यो न पावे ?

निरतिवाद साधुसस्थाओ को नष्ट नही करना चाहता है पर उनको भीख मागने का धधा करनेवाली एक जाति के रूपमे नही देखना चाहता। उन्हे समाजके नियन्त्रण मे रखना

चाहता है और इस कार्य मे सरकार से भी यथा-योग्य सहयोग चाहता है इसके अतिरिक्त लोगो को यह भी सिखाना चाहता है कि किसी को साधु मानने के लिये निम्नलिखित बातो का विचार करो ।

१–वह पूर्ण सदाचारी है ।

२–समाज से लेकर अपने लिये धनसग्रह नहीं करता ।

३–समाज से जितना लेता है उससे अधिक समाज की भलाई करता है ।

४–जातिपॉति का पक्षपाती नही है और न सम्प्रदायो मे द्वेप फैलाता है ।

५–लोकसेवा और साधु जीवन बिताने की समझदारी रखता है ।

सन्देश बीसवॉ

धनवान होने से ही कोई भला आदमी या आदरणीय न समझा जाय । अगर उसने धन ईमानदारी से पाया है और सभ्य है तो भला आदमी समझा जाय । अगर उसने धन समाज हित के काम मे लगाया है तो आदरणीय समझा जाय ।

भाष्य–हरएक धर्म ने धनसग्रह की निन्दा की है और जनता भी इस निन्दाका विरोध शब्दो से नही करती । यह निन्दा उचित भी है पर लोगो की दृष्टि और लोगो का व्यवहार बिलकुल उल्टा है । किसी मनुष्य ने किसी तरह धन एकत्रित कर लिया तो वह कैसा भी हो और जनसेवा भी न करता हो पर आदर इज्जत और भलापन उसे मिल जाता है । कम से कम वह साधारण गृहस्थसे वहुत ऊचा हो जाता है । अगर हम धन के अन्ध-प्रशसक या अन्धपूजक बन जॉय तो लोग अन्य गुणो की अपेक्षा धन पर ही टूटेगे । धन से भोगो-पभोग के सुभीते इच्छानुसार मिल ही जाते है पैसो के द्वारा नौकर चाकर तथा उनके द्वारा सन्मान मिल ही जाता है अब अगर साथ मे जनता मे पूजा सत्कार आदर आदि भी मिले सज्जनता की छाप भी मिले, तब लोग धन को ही अपने जीवन का आदर्श क्यो न वनायेगे ? और वे धन के आगे ईमानदारी तथा जनहित की पर्वाह क्यो करेगे ?

यह निश्चित है कि कोई आदमी ईमानदारी से अधिक धन सग्रह नहीं कर सकता । यह दूसरी बात है कि वह कानूनी अपराध न करे इस प्रकार वाहिरी दृष्टि से वह ईमानदार बना रहे पर धर्म का जो मर्म है ईमानदारी का जो प्राण है उसको नष्ट किये विना अधिक धनसञ्चय नही होसकता । जो लोग बाप दादो के धन से धनवान होते है उनमे यह दोप कदाचित न हो पर उनके बाप दादो मे अवश्य था । तब एक दोपी की सन्तान होने से ही किसी का आदर क्यो होना चाहिये ?

अगर हम चाहते है कि लोग धन के लिये बेईमानी न करे धन को ही अपने जीवन का ध्येय न बनाये तो यह आवश्यक है कि धन का सन्मान करना छोड दिया जाय । अमेरिका की कुछ प्राचीन जातियो मे अभी भी यह रिवाज है कि कोई आदमी हजार का दान करने से हजार-पति की इज्जत पाता है हजार रुपया रखने से नहीं । लोकमत जब तक धन के विपय मे विशुद्ध न हो जायगा तब तक बढती हुई भौतिकता दूर नहीं हो सकती ।

धनवान का अगर आदर करना है तो पहिले से मत करो उसका सदुपयोग देखकर करो । लोक-मत अगर इस प्रकार सुधरजायगा तो धनवाले

को इस बात मे अपमान का अनुभव न होगा, धन जोडने की लालसा भी कुछ कम हो जायगी और धनी होजाने पर जनहित के कार्य मे खर्च करने की भी सूझेगी ।

शंका–धनका इतना अपमान क्यो ? विद्या कला आदि की तरह यह भी एक शक्ति और सेवा-साधन है । अगर विद्वान का आदर करते है कलावान का आदर करते है तो धनवान का क्यो न करे ?

समाधान–विद्या कला आदि के आदर मे भी उसके सदुपयोग का विचार किया जाना चाहिये । फिर भी धनवान के समान विद्वान आदि की उपेक्षा न होना चाहिये । इसका मुख्य कारण यह है कि विद्या कला आदि का सग्रह धन के सग्रह की तरह पापरूप नही है। अधिक धनवान बनने के लिये प्राय: दूसरो का हक्क मारना पड़ता है पर अधिक विद्वान या कलावान बनने के लिये ऐसा नही करना पडता इसमे परिश्रम की ही मुख्यता है । दूसरी बात यह है कि विद्वान् या कलावान अपनी आजीविका के लिये यद्यपि कुछ लेता अवश्य है पर आजीविका चलने के बाद वह विद्या कला का उपयोग प्रायः आर्थिक बदले के बिना भी करता है । इसलिये धनसग्रह के साथ विद्या आदि की तुलना नही की जा सकती । हा, धनीका आदर न करने पर भी दानी का आदर करना चाहिये ।

धन के हाथ मे लोगो के विविध स्वार्थ और आशाएँ रहती है इसलिये धनियो को असली नही तो नकली प्रेम आदर तथा चापलूसी मिला ही करती है पर लोगो का यह पतन भी यथा-शक्य कम हो ऐसा वातावरण निर्माण होना चाहिये। इस विषय मे यह सन्देश लोगो को नैतिक तथा शास्त्रीय आधार का काम देगा ।

निरतिवाद न तो धन की अवहेलना करता है न उसे पुण्य या आदर की चीज समझता है । धनको समाजहित मे लगाने को ही आदरणीय समझता है ।

सन्देश इक्कीसवाँ

सदाचार और विशेष सेवा ही महत्ता और पूज्यता की निशानी समझी जावे ।

भाष्य–धार्मिक और सामाजिक दोनो क्षेत्रो मे इस सन्देश को अपनाने की जरूरत है । हमारी उपासना भी इन्ही गुणो के आधार से होना चाहिये । राम कृष्ण आदि की पूजा हम इसलिये न करे कि वे बलवान थे, सुन्दर थे, श्रीमान् थे, पर इसलिये करे कि वे सदाचारी थे, त्यागी थे, समाज की उनने विशेष सेवा की थी । भयपूजा बिलकुल निकल जाना चाहिये । शनैश्चर बडे क्रूर है कहीं नाराज न हो जाये इसलिये उनकी पूजा करो, इस मान्यता मे अन्धविश्वास तो है ही पर दुर्जनता को उत्तेजन भी है । कोई आदमी शक्तिशाली और क्रूर है तो हमे उसकी पूजा न करना चाहिये बल्कि निन्दा और दमन करना चाहिये या उसे प्रेम और सेवा का पाठ पढाना चाहिये । धार्मिक क्षेत्र मे जो अन्धविश्वास और मूढता प्रविष्ट हो गई है वह जाना चाहिये ।

सामाजिक क्षेत्र मे भी यही बात होना चाहिये । हम जिस चीज की पूजा आदर सत्कार करेगे जिसको महान समझेगे लोग उसी को अधिक बढाने की चेष्टा करेगे । अगर आप सदाचार और जन-सेवा की अपेक्षा धन वैभव शक्ति अधिकार के सामने अधिक झुकते है तब यह स्वाभाविक है कि लोग सदाचारी बनने और जनसेवा की उपेक्षा करके धन वैभव अधिकार आदि के लिये प्रयत्न करे । मनुष्य समाज स्वर्ग और वैकुण्ठ की तरफ

...ना बढ़ सकता है जब मनुष्य सदाचारी और निस्वार्थ-सेवी हो।

आप एक अधिकारी के सामने एक सदाचारी जनसेवक की उपेक्षा करते हो वैभव और बल के सामने सिर झुकाते हो और प्रेम की पर्वाह नहीं करते तो इसमे सन्देह नहीं कि आप जगत को नरक की तरफ लेजा रहे हो।

एक सज्जन ने यह सूचित किया है कि सत्य और बहादुरी को भी इस श्रेणी मे ले लेना चाहिये। परन्तु सदाचार मे सत्य का समावेश होजाता है। अहिंसा सत्य शील ईमानदारी आदि सदाचार के ही नानारूप है इसलिये सत्य को अलग कहने की आवश्यकता नहीं है। अथवा अगर कोई सत्य की व्यापक व्याख्या करके सब सदाचार को उसमे शामिल करना चाहता है तो कोई विरोध नहीं है पर साधारण जनता की दृष्टि मे सदाचार शब्द व्यापक है।

बहादुरी को पूज्यता की निशानी मानना ठीक नहीं। बहादुरी का उपयोग जनसेवा के लिये जितने अंश मे होगा उतने ही अंश मे पूज्यता आजायगी सो यह बात धन विद्या कला आदि के विषय मे भी है।

इसका यह मतलब नहीं है कि इन गुणो की अवहेलना होना चाहिये। आवश्यकता सब की है पर पूज्यता इनसे तभी मानी जा सकती है जब जन सेवा के मार्ग मे इनका उपयोग किया जाय। निरतिवाद न तो इनका विरोधी है न इन्हीं मे कर्तव्य की इतिश्री समझता है।

उपसंहार

निरतिवाद का पहिले विस्तार से आर्थिक रूप बताया गया था पर निरतिवाद के क्षेत्र मे तो धर्म, समाज, राजनीति [राष्ट्रीय और अन्त-र्राष्ट्रीय] सभी शामिल हो सकते है इसलिये इक्कीस सन्देशो का निरतिवादी भाष्य किया गया। इसमे विश्व की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी समस्याओ का हल करने का प्रयत्न किया गया है।

यद्यपि इसमे साम्यवाद या समाजवाद का कुछ विरोध किया गया है परन्तु गौर से देखने से मालूम होगा कि यह समाजवाद की आत्मा का भारतीय अवतार है बल्कि भारत से ही खास सम्बन्ध रखनेवाली एक दो बातो को छोड़कर तो इसका रूप विश्व के लिये उपयोगी है और ऐसा है जो साम्यवाद की अपेक्षा अधिक समय तक स्थिर रह सके। यह पूँजीवादियो को तो असह्य होगा पर पूँजीपतियो को असह्य न होगा इसलिये व्यवहार मे भी जल्दी आसकता है और इसको व्यवहार मे लाने का क्रम भी बनाया जा सकता है। हां, इसके लिये सगठन करने की आवश्यकता है।